

प्रकाशक. —

श्री अण्णरचन्द्र भैरोंदान मठिया
डेन पारमार्थिक सभा,

बीकानेर

प्रथमावृत्ति

१०००

मुद्रक:—

श्री जालमसिंह के प्रबन्ध
गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस,
बीकानेर में मुद्रित

‘ज्ञानाक्रियाया मोक्षः’ मध्यक ज्ञान और क्रिया में मोक्ष की प्राप्ति होती है, गुण-आचार के भिन्न ज्ञान और क्रिया दोनों की आवश्यकता होती है। इस/अन्य व्यापार का परिणाम यह व्यक्त करने में जाना गया है। अथवा किसी अवेद्या विशेष से ज्ञान की अवेद्या क्रिया की प्रयोज्यता होने से क्रिया रूप आचार को बनाने वाला यह मूल भी जाना है। इसीलिए यह पहला अङ्ग है।

इसमें दो स्तर हैं। पहले धर्म-व्यवस्था में जो व्यवस्था है और दूसरे धर्म-व्यवस्था में जो व्यवस्था है। दोनों धर्म-व्यवस्था में जो व्यवस्था है। दोनों धर्म-व्यवस्था में जो व्यवस्था है।

दूसरा स्तर ज्ञानात्मक में व्यापार-मूलक व्यवस्था है। इसका पटन-पटन आत्म-व्यवस्था एवं मोक्ष-प्राप्ति का कारण है। इस/अन्य मूलक को इस मूल के पटन-पटन का लाभ व्यवस्था सेना चाहिये।

निवेदनः—

वेधरचन्द्र पौडिया ‘वीरपुत्र’

जैन विश्व-शास्त्री, न्यायतीर्थ, व्याकरण-तीर्थ,

वीरकान्तेर

आचार—ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य रूप मोक्षमार्ग की आराधना के लिए किया जाने वाला विविध आचार ।

लौकिकी—मिक्षा परलु कराने की विधि ।

विमल—ज्ञान और ज्ञानी की तथा चको को विमल-भक्ति ।

विशेष—शिक्षों का स्वरूप और उनका आचार ।

भाषा—आर प्रकार की भाषा का स्वरूप ।

परलु गति—बोध महाव्रत, दस प्रकार का स्वयं धर्म, सतरह प्रकार का संवत्स, दस प्रकार का वैराग्य, प्रत्यक्ष की गव धर्म, ज्ञान
दर्शन, चारित्र्य, धारद प्रकार का रूप और चार कर्माओं का निष्पत्ति (दमन) ।

दाल ललरि—आर विल्लविरुद्धि, पांच मतिनि, बारह भाषा, बारह भिन्नगुणित, पांच शक्तिओं का दमन, वल्लवीस प्रकार की
वदिलेइला, तीन गुणितों, द्रव्य देश काल भाव के भेद में चार प्रकार का अभिपद ।

भाषा—संवत्स रूप वाक्का का वालन ।

दुति—विभिन्न अभिपदों को धारण कर के संवत्स की पुष्टि कराना ।

आचार के संज्ञे से पांच भेद हैं—१ ज्ञानाचार, २ दर्शनाचार, ३ चारित्र्याचार, ४ रूप आचार, ५ वीर्योपाचार । संवत्स रूप
का ज्ञान करने के कारणभूत भुक्तज्ञान की आराधना करना ज्ञानाचार है । दर्शन कर्तव्य, सम्यक्त्व की निशंकित निःकाक्षित चारि
रूप से युक्त आराधना करना दर्शनाचार है । ज्ञानपूर्वक और यदापूर्वक सर्वसाध्य योगों का त्याग करना चारित्र्य है, चारित्र्य का
संवन करना चारित्र्याचार है । आभ्यन्तर और बाह्य बारह प्रकार का रूप करना रूप आचार है । अपनी शक्ति का गोपन न करने हुए
धर्मकावों में व्यवहारिक प्रवृत्ति करना वीर्योपाचार है ।

'मानक्रिया'को मोक्ष" मर्याद ज्ञान और क्रिया में मोक्ष की प्राप्ति होती है, शुद्ध आचार के लिए ज्ञान और क्रिया दोनों की आवश्यकता होती है। इसलिए आचार का प्रतिपादन यह अर्थ पहले बताया गया है। अथवा किसी अथवा विशेष से ज्ञान की अथवा क्रिया की प्रामाण्य होने से क्रिया स्व आचार को प्रकट करने वाला यह मूल भी प्रमाण है, इसीलिए यह कहा जा सकता है।

इसमें दो प्रमाण हैं। पहले प्रमाण में जो आचार में जो मोक्ष अथवा मोक्ष है। दोनों प्रमाणों में कुछ अर्थ व्यक्त है। उनमें यह है।

इस प्रकार ज्ञानों में आचारों में मूल का प्रमाण है। इसका प्रमाण-पाठन आत्महत्याएँ एवं मोक्षप्राप्ति का कारण है। इसलिए मूलों को इस मूल के प्रमाण-पाठन का लाभ अथवा लाभ प्राप्त होना चाहिए।

निवेदनः—

पेपरचन्ड्र पौठिया 'वीरपुत्र'

जैन मिश्रान्तराक्षी, न्यायतीर्थ, व्याकरणतीर्थ,

वीरानेर

आभारप्रदर्शन

वाराणसी के मुनि श्री १००८ श्री हनुमानजी महाराज के पक्ष पक्ष पर प्रतापी आचार्यवर पूज्यश्री १००८ श्री जगद्गुरु-
 वाग शरणीय पूज्यश्री १००८ श्री हनुमानजी महाराज ने हम आचार्यग मंत्र की हस्तलिखित कापी का परिष्कार
 आभार प्रदर्शन के मुनि श्री १००८ श्री हनुमानजी महाराज ने हम आचार्यग मंत्र की हस्तलिखित कापी का परिष्कार
 आभार प्रदर्शन के मुनि श्री १००८ श्री हनुमानजी महाराज ने हम आचार्यग मंत्र की हस्तलिखित कापी का परिष्कार
 आभार प्रदर्शन के मुनि श्री १००८ श्री हनुमानजी महाराज ने हम आचार्यग मंत्र की हस्तलिखित कापी का परिष्कार

निवेदनः—
 मेरोदान जेठमल सेठिया

समिति

[illegible]

વધુ માહિતી મુજબ બે સરભલાઓ ગદાગાજા થી મળે છે.

TX-7-14-15

गुणियाना (पञ्चाण)



प्राज्ञा

डि० गुलामअली खलकाना एव अमन

आलपुत्रीय महावीरसंघीय जैन मुनि श्री फूलचन्द्रजी महाराज जैन धर्मोपदेष्टा की

मम्मति

वर्तमान व्यवस्थाव्यवस्था की ओरिया जैन न्याय, न्यायकाल नीति, मिदानी शास्त्री ने प्रथम अष्टश्री आचारंग सूत्र का हिन्दी भाषा में मुद्रा बनाया है। यह है मूलका अन्वयार्थ की प्रियेगी न पुनरुक्त की उपयोगिता में बार चौद समा दिये हैं। पक्षति समाहित है। सूत्र में व्यवस्था करने वालों के लिए यह अनुवाद पदा उपयोगी है। आचारंग सूत्र का इन सूत्र का हिन्दी भाषा में यह भाषा प्रथम अनुवाद हुआ है। यह भाषा भाषा, भाषक, भाषिका रूप चतुर्विध रूप के लिए पथ-प्रदर्शक का काम करेगा। यह अनुवाद किसी विषय में भ्रम नहीं है। यह भाषा भलीभाँति व्यवस्थित है। पुस्तक हाथ में आते ही प्रतिदिन रसाध्याय करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी। यह अनुवाद अनवरत सदायस्य है। सभी प्रकार के धर्मरहितों का भी अनुवाद हो जाय तो सोने में सुझाने वाली तमिः व्यवस्था हो गय भवतः की महान भाषा व्यवस्था

वचन

दुर्गाप्रसाद जैन

मुद्रागार (पुणे)

ज्ञानपुत्र महावीर जैन संघीय

'पुष्प भिक्षु'

आचार्यद्रु मन्त्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध की

विषयानुक्रमसणिका

अध्याय का नाम

विषय

पृष्ठ

पहला अध्याय — शास्त्रपरिक्षा । जीवो को हिंसा के कारण को राख कहते हैं । इसके दो अंग हैं—शुद्धयसाध और मोक्षोपदेश ।
 लक्षणकार आदि उक्त राख है और अशुभ योग भाष्यगच्छ है । इस अध्यायक में सात शास्त्रों की परिभाषा दी गई है ।
 अतःकारण है । शास्त्रों को लक्षण की होती है—(१) इतिहास अर्थात् अशुभ योग आदि कर्मकर्म के कारणों का ज्ञानना । (२) साध्यादिवानव रेखा अर्थात् कर्मकर्म के कारणों को ज्ञान ना उनका त्याग करना । पहले साध्यादिवानव से सात उद्देश्य हैं । एक साध्यादिवान से आये हुए नवीन विषय के कारणों को उद्देश्य कहते हैं ।

१ उद्देश्य—'यह आचार्य हिंसा से आया है' इतिहास विचार । कर्मकर्म के हेतुओं का विचार ।

२ उद्देश्य—'यह आचार्य की हिंसा से निवर्तते का उद्देश्य' । दुष्कर्मों का अनुभव भवने के लिए अन्त से अन्त और बाह्य का उद्देश्य ।

३ उद्देश्य—'आचार्य की हिंसा से निवर्तते का उद्देश्य' ।

४ उद्देश्य—'अविहीन को हिंसा से निवर्तते का उद्देश्य' ।

१

२

३

४

। अही गली बर हाहा तु ल की भरबाह न करके हाहा अगाह समयाव रचना । ॥१॥ आश्विन
म बाहा उदरा है—

१ उदरा—बाहन्त म भीका दूका बीन है । अकानो हाव से आगते हुए की भाव से मोने हुए हैं और
कानी मुनि हदक से सात हुए भी भाव से सहा आगते हैं । बीर—मुनि परीषद उपमनों को सम-
बाव से हदक करता है ।

२ उदरा—अक को मुल्ल मिक है । बाव क कदुव फर । बावों की रगगने का उपदेश । मोचामी को बाव १००
को अकक-ता बीनो वकार क बन्धनों को हाँक कर विषयासक्ति का त्याग करना चाहिए ।

३ उदरा—मुनि का अयथाक होना चाहिए । अकवा भावि के कारण बाव का प्रतिकार क्या परीषद सहने १००
म वों को नुन नही बन्त है, उसके लिए हुए में संयम होना चाहिए । आत्मा का सज्जा
मिक् का-का हा है

४ उदरा—कोम मान साया लोभ-मन बचावों को छोड़ने का उपदेश ।

पौष आश्विन

११३

सोहमार

१ उदरा—बाहन्त इस आश्विन में बार उदरो है—

२ उदरा—बरावों के बधावें स्वरूप का दयन । समर्पित का बर्णन ।

३ उदरा—बाहन्त और विजया का बर्णन । परकत का दुर्निर्णय करकन ।

४ उदरा—अव का बर्णन ।

५ उदरा—अवम में विवर रचना ।

११६

११७

११८

११९

अन्यथापत्तिः—(१) योग (योग), आत्मा (आत्मा), भिन्न-भिन्न गतिविधियों में उत्पन्न होने वाला (वर्तमान) है, अथवा (यदि) मेरा (आत्मा) आत्मा (आत्मा) भिन्न-भिन्न गतिविधियों में उत्पन्न होने वाला (वर्तमान) नहीं है ? तथा (अर्थ) मैं (के) कौन (आत्मा) था और (इसी) रूप में (आत्मा) भिन्न-भिन्न गतिविधियों में उत्पन्न होने वाला (वर्तमान) होऊँगा ? ॥३॥

मायां प्रथम ज्ञानाश्रमगीय क. दशम सं. ज्ञम. ६। ज्ञान-गो. च. टूक मंड है यह जीय यह नहीं जानता कि मैं पूर्णभव में कीन
या अरि आरा म. १०३३।

ये त्रै पुण त्रैलोक्ये मह मममयाण परवारागं अणमि वा अंतिम मोक्षा तंजहा: —

तुल्यमाश्रो वा दियःश्रो आगश्रो अहमंगि जाव आणगरीश्रो दिमाश्रो अणुदिसाश्रो वा आगश्रो अहमंसि,
तान्यंगीम तं मागं भवट --अन्थि म आया उववाहण, जो इयाश्रो दिमाश्रो वा अणुदिसाश्रो वा अणुसंचरइ, सोहं ॥४॥

अन्वयार्थः ॥ यह पुरुष (पुरुषः) अपनी मन्मति-मृन्म बुद्धि पदं ज्ञातिस्मरण ज्ञान द्वारा तथा (तत्वाण्येण) नीचा र शक्ति-वशता से अपनी मूर्खता से (गोचरा) सुनकर (पुण) फिर (जं) पूर्वोक्त बातों को नहीं जान लेता है ॥ जैसे कि (२) से (१) जायें ॥ विद्या से (आगत्यो अंगि) आया हूँ (वा) अथवा (जान) याचत (३) से (२) जायें ॥ अतः सगान किसी एक (१) विद्या में (वा) अथवा (अणुदियायो) अनुदिशा से (अहं) मैं (आगत्यो अंगि) आया हूँ ॥ ॥ ॥ विनयी नीचों का (१) ज्ञान प्राप्त (अवद) हो जाता है (जं) कि (मे) मेरा (आया) आत्मा (जवाइए) औप-

॥ २१ ॥

[illegible]

कर्मवन्दन

तमार्जुन मन्त्रानां नार्हाम कर्ममपरां वा पवित्राणि गन्ध्वा भवन्ति ॥१२॥

प्रस्तावना. . . नाथ से . . ि। दुर्गती सी (कृष्णमार्गा) निपाई (परिजातियक्षा) जानने योग्य
३१॥

[illegible]

समस्त ज्ञानिभिः कथ्यमानं वा पुराणमात्रं भवति मे हृत्पुत्री पवित्रायाय नमः ॥१३॥ त्रि वेदि ॥

ॐ प्रथम अध्ययन का दूसरा अध्याय

अत्रं लोके परिजुगो नृस्यं चोदं अस्मि लोके पञ्चहिमं तत्थ तत्थ पुढो पास आउरा परितायेति ॥१४॥
अन्यथाप्यर्थः—(लोके) यह प्राणिपदं (चंदं) आसं-दुःखी है (परिजुगो) उत्तम विधेय रहित है (दुःखं चोदं) दुःख से मोक्ष करने योग्य है (परिजुगो) अज्ञानी है (चंदं) इत्य (लोके) लोक के अर्थान् पृथ्वीकाय के (पञ्चहिमं) पीठिन होने पर भी (आउरा) वे आलुर जीव (लोके) विज्ञ मित्र कायो के ज्ञान (पुढो) अलग अलग इसे (परितायेति) परिताप देते हैं ॥१४॥

अन्यथाप्यर्थः—चतुर्धा विषयमात्र जीव अपने स्वार्थ के लिए नाना प्रकार में पृथ्वीकाय का आरम्भ समारम्भ करते हैं किन्तु

विषयही पुरण वेसा नहीं करते हैं ॥

मंनि पाणा पुढो मिया, लज्जमाणा पुढो पाग अणगारा मो सि एरो पवयमाणा जमिणं विरुवरुवेहिं सत्येहिं
मंनि पाणा पुढो मिया, लज्जमाणा पुढो पाग अणगारा मो सि एरो पवयमाणा जमिणं विरुवरुवेहिं सत्येहिं ॥१५॥

पृथ्वीकस्मयमारंभं पृथ्वीकस्मयं अणोवि अणोमरुवं पाणे विहिंयद ॥१५॥

अन्यथाप्यर्थः

अनेक प्राणी (पं०) अलग अलग (मिया) पृथ्वी में रहे हुए (मंनि) हैं, अतः उनके आरम्भ से (लज्जमाणा) लज्जित होने वाले (लोके) जीव (पाणा) जो पृथ्वी पर हैं आरम्भ स्वयं नहीं करते हैं, दूसरों से भी नहीं करवाते हैं तथा आरम्भ करने वालों का अज्ञान होने का कारण नहीं बताते हैं उसे मायुओं को है दिग्ग्य ! (पुढो) पृथक् (पाग) वेदो अर्थान् पृथ्वीकायादि का आरम्भ करने

❖ पहले अध्ययन का तीसरा उद्देश्य ❖

ये वेमि मं त्रहा वि अगगा उज्जुक्क
गिगगण्डिवणो असायं कञ्जमाणो वियादिण् ॥ १६ ॥

अन्वेषार्थः (१) पूर्वीकाल में आर्य का श्रावण करने वाला यह पुरुष (अर्थात्) अन्नगार—साधु
जनता है (२) यह ध्वजलाना ई . . . १२ मरजता मुक्त एवं पूर्णरूप से संयम का पालन करने वाला (नियमनविष्णो)
मरजमान कृष्ण चरित्र रूप मान्यता का प्राप्त हुआ और अर्थात् ध्वजलानो) माया न करना हुआ पुरुष पूर्ण अन्नगार (विधाविधि)
यह माया है . . .

आम मद्रा॥ मित्रमंनो नमः यण्णालिया विगहिन विगोचियं ॥ २० ॥

प्र. ११११ : . १२३३ . . १५३३ २३ . ॥ १५३३ ॥ श्रीश्री भारती की है (विशेषण) श्रद्धा को (विशेषण-निजदिल) श्रोतृकर

मानव

परिष्कारों में दीक्षा ली है इन्हीं परिष्कारों के साथ प्रोचन
प्रयत्न

पुस्तक १०१ महावीर लीग व आचार्य आभिमन्यु आभिमन्यु ॥ २१ ॥

महावीर लीग व आचार्य आभिमन्यु आभिमन्यु ॥ २१ ॥
महावीर लीग व आचार्य आभिमन्यु आभिमन्यु ॥ २१ ॥

महावीर लीग व आचार्य आभिमन्यु आभिमन्यु ॥ २१ ॥
महावीर लीग व आचार्य आभिमन्यु आभिमन्यु ॥ २१ ॥

महावीर लीग व आचार्य आभिमन्यु आभिमन्यु ॥ २१ ॥
महावीर लीग व आचार्य आभिमन्यु आभिमन्यु ॥ २१ ॥

महावीर लीग व आचार्य आभिमन्यु आभिमन्यु ॥ २१ ॥
महावीर लीग व आचार्य आभिमन्यु आभिमन्यु ॥ २१ ॥

भाष्यार्थः—जल, जलकाय के जीवों की सम्पत्ति है। वे उन्हे देखे नहीं हैं किन्तु जानती थीय उनसे जबरदस्ती छीनते हैं। अतः मनुष्य जल का उपयोग करने वाले अदत्ताधान के भी श्रेणी बनते हैं ॥

कण्ड गो कण्ड गो पाउं अदुवा विभूसाण ॥ २७ ॥

अन्यथाार्थः—अन्यतीर्थी कच्चा जल पीने है और उससे अपने हाथ पैर धोते हैं तथा स्नान करते हैं। यदि कोई उनसे लेना न करने के लिए कहता है तो ये उत्तर देने हैं कि (गो) हम लोगों को (पाउं) कच्चा जल पीना (कण्ड) कल्पता है (अदुवा) अथवा (विभूसाण) कच्चे जल से हाथ पैर धोना, स्नान करना एवं यत्र आदि धोना (कण्ड) कल्पता है ॥ २७ ॥

भाष्यार्थः—अन्यतीर्थियों का व्यवहार कथन अज्ञानमूलक एवं मिथ्या है ॥

पुद्गो मन्थहि विउदुंनि ॥ २८ ॥

अन्यथाार्थः—अन्यतीर्थी (पुद्गो) मित्र मित्र (मन्थहि) शस्त्रों के द्वारा (विउदुंति) अल्काय-जलकाय के जीवों की हिला

करते हैं ॥ २८ ॥

तन्व वि नंभि गो गिरुगगाण ॥ २९ ॥

अन्यथाार्थः—तन्व वि हम मित्र हैं (नंभि) उन अन्यतीर्थियों के शास्त्र भी (गो गिरुगगाण) निधाय करने में समर्थ नहीं है क्योंकि ये शास्त्रपरहित साधन पुरुष द्वारा मन्थ हुए नहीं हैं ॥ २९ ॥

ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, ੨੨ ਮਾਰਚ ੧੯੪੭

हे । (३) तो (लघु, गङ्गा (लघुःपञ्चमीः) मृच्छिका हो जाते हैं (३) ये (लघु) यहाँ (अव्यय) मृत्यु का प्राप्त हो जाते हैं और मृम का वर्णन किया गया है और मृम

[illegible]

आर्यसमस्या पदार्थनिर्माणं ॥ ६० ॥

अन्वयार्थः (१) वायुकाय तथा पृथ्वीकाय आदि किसी एक काय के आच्छन्न से भी प्राणी (जाइवजगत्) और कार्यों के लिये होते पाये जाय कि वासी होता है। (३) जो पुरुष (आचार्य) आचार में (ण रति) प्रेम नहीं रखते हैं वह भी (विनाश) से अपने तब आच्छन्न जिन पापकर्मों का मध्य होता है। इस प्रकार आर्यजगत् से अपनी इच्छानुसार आचरण करने हैं और (आत्मोत्थाना) निश्चयों में आत्मन रहने हैं ॥ ६० ॥

है। यह प्रमाण है कि भारतीय समाज का अस्तित्व केवल धर्म के कारण नहीं बल्कि समाज के अस्तित्व के कारण है।

साधनाः
(१) १.३ आत्मनीशो आपन आधिकार छोड़ दे ॥
(२) १.३ आत्मना काने हुए याकन के मागी होते हैं ॥

मे ननुमे मन्त्रमपरागमपरागमं
अप्यभोगं अकरगिजं पावे कम्मे मा अएणाप, प मन्त्रम

अन्वयार्थ --- ५) जो (५९) शब्दादि गुण हैं (६०) वे ही (मूलादि) संसार के मूलकारण कथाओं के स्थान हैं और (६१) जो (६२) संसार के मूलकारण कथाओं के स्थान हैं (६३) वे ही (६४) शब्दादि गुण हैं (६५) इसलिये जो पुरुष (गुणही) शब्दादि विषयों की इच्छा करता है (६६) यह (६७) महान् (वीर्यवान्) परित्याग के साथ (पुनः पुनः) बार बार (बन्धे) इस संसार में जन्म ग्रहण करना ही और (६८) प्रमाद में पड़ा रहता है (६९) मेरा (मया) पित्त है, (७०) मेरा (मया) धर्म है, (७१) मेरी (मया) स्त्री है, (७२) मेरी (मया) पुत्री है, (७३) मेरी (मया) लज्जा, पुत्रकपूर है (७४) मेरा (७५) शत्रु है, शत्रुजन हैं, स्वयम्भी हैं परित्यक्त हैं (७६) मेरे (निर्बोक्ता) विद्वान् (विद्वान्) विविध प्रकार के उपायों द्वारा लोक का (७७) वाहन, भोजन और धन वस्तुओं को अपनी समझ कर (७८) ब्रह्मन् (७९) इनमें व्यग्रता रहता है और (८०) अपने करवाण व अनुष्ठान में प्रमाद करता है (८१) और (८२) रात्रि दिन (८३) इनकी चिन्ता में रत रहता हुआ इनकी रक्षा के लिए (कालकालसमृद्धि) काल और अकाल में यानी स्वयं और स्वयं में उठ कर व दिन परिभ्रम करता है (कालकालसमृद्धि) अपने कार्मणीय और प्रियजनो में वसन्तिन रहता है और (८४) स्वयं उनका स्थान चाहता है, उनमें गान्धर्व (अप्रीति) धन का लोभी भाग कर (आनुवे) खोरी करता है और (८५) पिता पितृणां गोपय काँवे करता है, वह अपनी कामवासना की पूर्ति के लिए (पुनः पुनः) बारबार (एव एव) वृथोक्त का आश्रय करता है (८६) इस संसार में (८७) निश्चय ही (नयान् मरणान्) कितने ही मनुष्यों की (आर्त्थ) श्राप (८८) बहुत भारी होती है उन इस योग्य भी श्राप के लिए भाग करना भाग मूर्खता है ॥ ६० ॥

जीविए इह जे पसन्ना, से हंता छेत्ता भेत्ता लुं पित्ता उद्विप्ता उत्तासहत्ता, अकडं करिस्सामिति मण्णु-
माणे, जेहि वा सद्धि, मंवमइ ते वा हां एगया स्थियया तं पुंन्वि पोमैति, सो वा ते गियणे पच्छा पोसिज्जा, खालं ते तव
ताणाए वा सरणाए वा, तुमं वि तेमि खालं ताणाए वा सरणाए ॥ ६६ ॥

अन्वयार्थः—(अ) जो अज्ञानी (इह) इस (वर्तमान) जीवन में (जन्म) प्रमादयुक्त है अर्थात् भूले हुए है, वे प्राणियों के नाश
की प्रिया में प्रवृत्ति करने हैं, तथा (न) वे अज्ञानी जीव (इना) प्राणियों का हनन करते हैं (केना) उनमें सद्गुणों का छेदन करते हैं
(नत्ता) उनके शिर और शिर का मंदन करते हैं (नुत्ता) लोगों को ग्राह्य काटते हैं (इत्तुपिना) इन्द्रियों का छेदन-सेवन करते
हैं (उत्तासहत्ता) दिव और शम्भुदि का प्रयोग करने के प्राणों का हरण करते हैं और (उत्तासहत्ता) प्राणियों को सत्रेक प्रकार से
॥॥ और प्राप्त देते हैं । (मण्णुमाणे) अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि (अकडं) आज तक जो कार्य किसी ने नहीं किया यह कार्य
(करिस्सामिना) मैं करूँगा, ऐसा मानकर द्रव्य उपार्जन के लिए पापकर्म करता है किन्तु लाघान्तराय के उदय से धन न मिलने पर
अथवा प्राप्त धन का विनाश हो जाने पर (अहि सद्धि) जिनके साथ (सहत्ता) वह नियास करता है (हि) वे (जिपण) पुत्र कलत्रादि
स्वामीय ॥॥ (एगया) किसी समय (पुल्ल) पहले (न) उस पुरुष का (पेममि) पोषण करते हैं (वा) अथवा धनसम्पत्ति होने पर (वी)
यह (वत्ता) पीछे या पहले किसी समय (हि) उन (जिपण) पुत्र कलत्रादि स्वामीय जनों का (पोसिज्जा) पालन पोषण करता है । ऐसे
पुरुष को लक्ष्य करके शास्त्रकार कहते हैं कि हे देवानुग्रिय ! (हि) वे पुत्र कलत्रादि स्वामीयजन (तव) तुम्हारी (ताणाए) रक्षा करने
में (वा) अथवा (सरणाए) शरण देने में (खालं) समर्थ नहीं हैं (वा) तथा (अपं हि) तुम भी (लिंकि) उनकी (ताणाए) रक्षा करने में (वा)
अथवा (सरणाए) शरण देने में (खालं) समर्थ नहीं हो ॥ ६६ ॥

उन पुत्र कलत्रादि आत्मीय जनों की (नागण्य) रक्षा करने में (वा) अथवा (सरण्य) शरण देने में (गाली) समर्थ नहीं हो ॥ ६५॥

भाषार्थः समानी जीव ज्ञाना कष्ट उठा कर धन मध्यय करते हैं। वे समझते हैं कि यह संग्रह किया हुआ द्रव्य भविष्य में हमारे सम्बन्धियों के काम में आयेगा तथा हम धन का यथेच्छ उपयोग करेंगे और इस धन से हम अपनी रक्षा कर सकेंगे ऐसा सोच कर ज्ञाना प्रकार कष्ट सहन करके धन का संग्रह करते हैं। वे न तो स्वयं पैदा भर खाते हैं और न खाने परियाज वालों को ही खान देते हैं। परन्तु इस तरह कष्ट पुर्यक उपाजन किया हुआ धन भी उनकी रक्षा नहीं कर सकता। बहुत बार यह भी देखा जाता है कि भागन के समय में उस पुरुष का गंगा आकर घेर लेते हैं और वह उस सम्बन्धित धन का भोग नहीं कर सकता। दूसरे लोग ही उस धन का उपभोग करते हैं। वह तो केवल परिश्रम और पाप का भागी होता है। इसलिए युद्धिमान पुरुषों को धन की गृहणा में अपने अमृत्यु समय को नष्ट करना उचित नहीं है ॥

ज्ञातित्तु दृक्त्वं पक्षयं मायं ॥ ६८ ॥

अन्यथायः प्राणिनो को (ना) मूल और (द्रव्य) दुष्ट (प्रेत) प्रत्येक यानी अलग अलग भोग्यता पश्यता है। (गालिगु)

यह ज्ञान कर गंग आने पर उस कष्ट को समभाव पूर्वक सहन करना चाहिये।

भाषार्थः—मसार में जितने प्राणी हैं सभी अपने किये कर्म के फलरूप सुख दुःख को अपने ही भोगते हैं। कोई किसी के सुख दुःख का भागी नहीं होता तथा वह कर्मफल अथवा ही भोगना पश्यता है, बिना भोगे वससे छुटकारा नहीं होता है। अतः ऐसा विचार कर विवेकी पुरुष को समभावपूर्वक वस दुःख को सहन कर लेना चाहिये ॥

अणभिरन्तं य रसु वयं मपेहाण ॥ ६९ ॥

(परिसरिष्णाणां) स्वयंभेन्द्रिय की शक्ति (अतिदीप्ता) क्षीण नहीं हुई है (स्वेषेणैव) इसी प्रकार (विलम्बेनैव) नाना प्रकार की (परिष्णाणैव) ज्ञानशक्तियों (अतिदीप्ताणां) का सक क्षीण नहीं हुई है तथा तत्त (आकृष्टं) अपने कल्याणार्थ (सर्वं समस्तुषांसिः) अच्छी तरह उपयोग करना चाहिये ॥ ७१ ॥ (लि केमि) पूर्वेवम् ।

नोट — इस श्लोक का म म म अर्थ 'परिष्णाणैव' और 'अतिदीप्ता' की अर्थ 'अतिदीप्ता' की अर्थ 'अतिदीप्ता' है ।

भावार्थ: का ! वनाशी शरीर का कुछ योग्यता नहीं है तथा जरा (बुद्ध्या) और रोग इसकी इन्द्रियों की शक्ति का नाश कर देते हैं । इसलिए जब तक उनका द्वारा इन्द्रियों की शक्ति नष्ट न की जाय तब तक ही मनुष्य को आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो जाना चाहिये अन्यथा अवसर यान्ति पर केवल पञ्चानाम के सिवाय कुछ लाभ होने का नहीं है ।

प्रथम उद्देशक समाप्त ॥ २-१ । १ ॥

की आत्मा से विपरीत यानी स्वच्छन्दयुद्धि से विचरण करने वाले क्लितनेक (मुण्डिणो) मुनिवेगचारी (भटिलेहंति) 'विषय भोग की प्राप्ति के उपायों में प्रयुक्त होते हैं (हत्वं) इस प्रकार (योद) मोह में (पुणो पुणो) बारम्बार (कण्ठा) कल्पन्त आसक्त जीव' (गी इत्यादि गो भारण) न हम लोक के रहते हैं और न परलोक के ही रहते हैं अर्थात् उनका इदलोक और परलोक दोनों धिगङ्ग जाते हैं । ७३।

भावार्थः—हिताहित के विवेक में रहित क्लितनेक अज्ञानी जीव गृहस्थाश्रम को छोड़ कर प्रव्रजित तो होते हैं किन्तु विषय-भोगों के सामने ज्ञान पर से उनमें पं.म. जानें हैं । वे न इधर के रहते हैं और न उधर के अर्थात् वे न तो गृहस्थ ही कहे जा सकते हैं और न साधु ही कहे जा सकते हैं ।

विद्युन्ता दु ते जया जे जया पारगामिणो, लोभमलोभेण दृगुल्लमाणे खदे कामे शाभिगाहर ॥ ७४ ॥

अन्वयार्थः—(अ) ओ (अण) पुण्य (पारगामिणो) पारगामी हैं अर्थात् जिन पुरुषों ने ज्ञान दर्शन साधन को प्राप्त कर लिया है (ह) वे (ह) अपश्य ही (पुण) मुक्ति को प्राप्त करने वाले हैं । (ल्लोभेण) अलोभवृत्ति के द्वारा (लोभ) लोभ से (दृगुल्लमाणे) घुणा करने वाले पुण्य प्राप्त हुए काममोहों का सेवन नहीं करते हैं ॥ ७४ ॥

भावार्थः—क्रोध, मान, माया, और लोभ इन चारों कषायों में लोभ मय से प्रधान है । लोभ के वश हुआ प्राणी न करने योग्य कार्य भी कर देता है । हमलिय लोभादि को छोड़ कर जिसने सम्मग्नज्ञान दर्शन पारिध को अङ्गीकार कर लिया है वह अवश्य मोक्ष को प्राप्त करता है ।

विद्या वि लोभं खिक्खम्म एम अकम्मं जाणस् पासद, भटिलेहाण् शावकंउद, एम अखगारे त्ति पयुग्गद, अहो प

कईंगा तो मेरे मनोरथ पूर्ण न होंगे । (पाशमुञ्चोति) वाम पाप से मुक्त हो आयेगे ऐसा (मणभाषे) मानते हुए कितनेक पुरुष जीव-
दिसा करते हैं । (चटुष) अथवा कितनेक जीव (चासंभाष) आशंसा से यानी भावी शुभ लाभ की आशा से एवं आगामी लाभ में शुभ
फल की आशा से जीवघात करते हैं ॥ ५२ ॥

भावार्थः—लोभ के बशीभूत पुरुष इहलौकिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए जीवहिंसा आदि अनेकविध पापा-
चरण करना है । जो पुरुष लोभ का त्याग करके स्वयम् अङ्गीकार कर लेता है एवं चारित्र्य का विशुद्ध रूप से वासन करता है वह थोड़े
ही समय में पानीकर्मों का कथ करके केशवज्ञान केवलदर्शन उपाजन कर लेता है ।

इस संसार में कितने ही प्राणी ऐसे हैं जो माधु के वंश को धारण करके भी इस भोक या परलोक के सुख के लोभ में पड़ जाते हैं
वे अपने जो माधु कहन की श्रुता करत हैं किन्तु वास्तव में वे माधु नहीं हैं । जो लोभ को जीत कर अकर्म बनने की चेष्टा करते हैं वे
ही सर्वत्र माधु एवं अनगार हैं ।

तं परिणयाम मेहावी एव सयं एण्हिं कज्जेहिं दंढं समारंभिज्जा एव अण्णं एण्हिं कज्जेहिं दंढं समारंभाविसा,
एण्हिं कज्जेहिं दंढं समारंभंत्तं वि अण्णं य ममणुजाखिज्जा, एम मग्गे भावरिण्हिं पवेण्ण, जहेत्थ कुमले खोवलिपिज्जासि
॥ ७६ ॥ त्तिवमि ॥ लोभाविजयस्स विठथा उदमो ॥

अन्वयार्थः—(मेहावी) वस्तुनस्य को जानने वाला बुद्धिमान पुरुष (न) उपरोक्त बातों को (परिलयाव) जानकर (एण्हिं) एन
उपरोक्त (कज्जेहिं) कार्यों के लिए (सयं) स्वयं (एव दंढं समारंभिज्जा) प्राणियों की हिंसा न करे तथा (एण्हिं) एन (कज्जेहिं) कार्यों के
लिए (अण्णं) दूसरे से भी (एव दंढं समारंभाविसा) प्राणियों की हिंसा न करावे और (एण्हिं) एन (कज्जेहिं) कार्यों के लिए (दंढं भाविसि)

खास, आर्त्तनं चिरन् मणिकुण्डलं मह हिमलयेण इन्धिय(ओ) परिमिज्ज् तत्थेव रत्ता, ए इत्थ तवो वा दमो ॥ शियमो वा दिम्मइ. मंपूएणं चले जीविउकांभं लालप्पमाणे मूढे विप्परियासमुवेद ॥ ७६ ॥

अन्वयार्थः—(७) यह । प्रचुर्यमाणे) अज्ञानी जीव (इच्छोचल) हनोपहत होता है अर्थात् नाना प्रकार की व्याधियों से पीडित और समस्त लोक के अपमान का पात्र होता है तथा । चाइमाण चतुसोऽवृणाणे) वह बारबार अन्ध मरण के चक्र में घूमता रहता है । (८८) इत्थ अगतु म । मणिकुण्डलमाज्जमाण) खेल, मकल चालि परिग्रह में मग्नता रखने वाले (कर्मिक) क्रिन्ननं क (भाणपाल) मनुष्यों को (पुढा जाक) आसवस जीवल (पथ) बहुत प्रिय लगता है । वे उसे अज्ञानी जीव (बाल शिखी) इत खिसे छत्त (मणिबु इन्) मणिवा कानों के कुजडल (हमलेण गेद दान्वात्ता) मोता और और आदि का (तर्लवज्ज) संघट्ट करके (त्थेव) इन्हीं में (ला) आसक्त रहने हैं । (दान) बाल-अज्ञानी जीव (जीवज्ज) अप्रपंचम जीवन की रत्ता कटना हुआ (पणुणं) प्राप्त हुए कामभोगों को भोगता हुआ उन्मत्त आसक्त रहता है और (त्थ) 'इत्थ संसार में (तवो वा दमो वा) तप, दम-मंचम और तियमों का कुछ भी कल (म) इत्था तेत्ता नहीं जाना है, इस प्रकार (मरे) यह मूढ—अज्ञानी जीव (विप्परियासमुवेद) समस्त वधाओं को विपरीत ही देखता है ॥ ७६ ॥

भावार्थः—प्राणिनों को अपने कर्मों का फल अदृश्य भोगना पड़ता है । इस संसार में जो नाना प्रकार के दुःख भोगे जानें हैं वे मग्न प्राणिनों के किंचिदुप लाभों के ही फल हैं । अतः बिंधकी पुरुष साधन कर्म का सेवन नहीं करते हैं वरन् अज्ञानी जीव इस जाल को नहीं समझते हैं इसीलिए वे पाप कर्मों का अपार्जन कर ऊँच नीच माना प्रकार के मोक्षों से उत्पन्न होकर संसार में परिजमल

प्रिय होता है। (जीविज्वाला) सभी प्राणी जीना चाहते हैं। (मन्योभि) सब जीवों को (जीविं) अपना जीवन (विं) प्रिय होता है।
 तथापि अज्ञानी जीव (१) अमंयम जीवन को (परिमिक्तः) स्वीकार करके (इत्थं) द्विपद अर्थान् दास दासी आदि नौकरों को तथा
 (चतुर्थी) चतुर्पद अर्थान् उंट बल आदि को (चोनिवृज्या) काम में लगाकर (तिविदेण) तीन कारण तीन योग से (संलिविषा) धन की
 पूर्ति करते हैं। इत्य मकार कटोर परिश्रम करने पर (ज्वाला) अल्प (१) अथवा (पुष्पा) बहुत (२) जो कुछ (३) उस धन की
 (५५५) मात्रा (५५५) होती है। इसमें यह प्राणी (मंज्वाला) भोग के लिए (परिक्तः) व्यय रहता है। (तभी)
 इसके पश्चात् (५५५) किसी समय (५५५) अर्थापार्जन करने हुए उस पुरुष के सामान्तराण कर्म के क्षमोपश्रव से (परिमिक्तः) भोग
 करने से यकी हुई सम्पत्ति (विच) विविध पथ (मदावपत्तः) कार्पा मात्रा में (मयं भव) एकट्ठी हो जाती है परन्तु (५) उसकी (५)
 उस सम्पत्ति का (५५५) कभी तो (५५५) दायद अर्थान् पैसुक सम्पत्ति के भागीदार (विभवति) बांट कर लेते हैं (५) अथवा
 (५) उसकी सम्पत्ति को कभी (अदन्तः) चोर (५५५) चुरा लेता है (५) अथवा (५) उसकी सम्पत्ति को कभी (राधाजी) राजा
 (विन्तः) उल्लेखीन लेते हैं (५) अथवा (५) उसकी सम्पत्ति (जाय) नष्ट हो जाती है (५) अथवा (विपत्तः) विविध प्रकार से
 नष्ट हो जाती है (५) अथवा (५) उसकी सम्पत्ति (अगदन्तः) घर में आग लग कर (५५५) जल जाती है। इस प्रकार (वत्स चतुर्थ)
 दुस्वर्ण के लिए (५५५) कर्म (५५५) करना हुआ (५) वह (बाँटे) बाल-सजानी (५५५) जल पाप से उपव्रत (इत्येक)
 दुःख से (सम्पदः) मुक्त बन कर (५५५) कर्तव्य अर्कतव्य के विवेक से दीन हो जाता है। (मुक्ति) धी धीतराग देय ने (५)
 निधय ही (५५५) यह (जाय) फलसाया है कि (५५५) ये अज्ञानी जीव (अपेक्ष) समार-सागर को पाद करने वाले नहीं हैं। (५)
 और ये (मोह) संसार सागर को (तस्मिन्) पाद करने में (भी) समर्थ नहीं हैं। (५५५) ये अज्ञानी जीव (अपेक्ष) समार-सागर के

अन्वयार्थः—(प्राप्तम्) जो मनुष्य ज्ञानवान् है उसके लिए (उत्तमो) उपदेश की आवश्यकता (कश्चि) नहीं है। (गले) बाल-अज्ञानी (लिङ्)। मगधेय से मोहित और क्षत्रियों से पीड़ित (पुण) और (काममगुल्लो) विषययोगों को मनोहर मान कर उनमें आसक्त रहने वाला पुरुष (अर्थात्पुरुषो) विषययोग और कथाओं से उत्पन्न दुःख को शान्त नहीं करता है। [त प्रकार (पुष्पी) सात्त्विक और मानसिक दुःखों से पीड़ित यह (दुःखमयेव) दुःखों के(आवृट्) चक्र में ही (मगुल्लिवद्ध) गिरा घूमना रहता है। ॥२१॥ (मि वाम) पुनरेवम् ।

भाषार्थः— जो वस्तु स्वरूप को देखने वाला है उसे पर्यट कहते हैं अथवा केवलज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों को जानने वाले तीर्थंकर भगवान और उनकी आज्ञा से चलने वाले पुरुष पर्यट कहलाते हैं। इस सब के लिए उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है। वे स्वतः ही मोहित और हिल स प्रवृत्ति करते हैं।

शान्ताद से मोहित और विषययोगों से आसक्त अज्ञानी पुरुष शारीरिक और मानसिक दुःखों से सदा पीड़ित होता हुआ संसार-चक्र में परिभ्रमण करता रहता है : दुर्मार्ग किन्हेही पुरुष को गमादि तथा विषययोगों का संबंध स्थापना कर देता चाहिये ॥

तीसरा उद्देशक समाप्त

दूसरे अध्ययन का चतुर्थ उद्देशक

— २७५ —

तस्मै मे तस्य शेषमयुष्याया मणुजैति, तैर्हि वा मद्वि संवसद् ने वा नं एवया जियया वृद्धि परिवर्तति, सो वा नं जियंगे पच्छा परिवर्तता, जालं नं नव नाणाए वा सरणाए वा तुमं वि तैमिं जालं नाणाए वा सरणाए वा, जणिपु दुवमं एतं मे मायं, सोमा मे य अणुमोरेनि इहमेगेमि माणवानं ॥ ८२ ॥

अन्वयार्थः - (८२) विद्यमयोग में आसक्त रहने से (१) इस विद्ययावक्त पुरुष को (एवय) कभी (शेषमयुष्याया मणुजैति) शेष उत्पन्न हो जाये है नव (२६ मंदि) जिसके मध्य (मोण्ड) यह रहता है (२) ये (जियया) उसके आरम्भिक जन (एवया) कभी (३) यहसे ही (४) इस शरीर पुरुष की (जीवन्ति) अवस्थितता एवं निष्ठा करते हैं (५) तथा (गी) यह भी (पच्छा) पीछे (६) उन (७) आरम्भिक जन की (८) अवस्था में अग्रहणना एवं निष्ठा करता है । शरीर पुरुष कहते हैं कि (९) ये आरम्भिक जन (१०) तुम्हारे (११) जाल (१२) वा (माणाए) शरण के लिए (जालं) स्वयं नहीं हैं (१३) और (एवय) तुम भी (हेमि) उनके लिए (माणाए) प्राण (१४) वा (माणाए) उत्पन्न नव (जालं) नहीं हो सकते हो । (१५) प्रत्येक प्राणी को (इसमें) अपना-अपना तुम्हें और (मायं) तुम्हें भागना पड़ता है तथा (जालं) । तब कर रोग के स्वयं व्यवहार न चाहिए । (१६) इस संसार में (हेमि) किन्तु एक (माणाए) ही है - में क्या व्यवहार के विचार उत्पन्न होते हैं कि (भोग) ये भोग (१७) मेरे हैं, मैंने इन लोगों को कितने परिश्रम

भावार्थः—विषययोग दृढरूप है। उनमें आसक्त प्राणी को अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जिन माता पिता स्त्री

को रोगाश्रय में प्राण-शरण रूप नहीं हो सकत। इसी तरह मनुष्य भी दुःखदायि द्वारा भले ही अपने मनु बाधों को सहायता करने परन्तु उनकी शारीरिक व्याधि को तो वह भी नहीं मिटा सकता है। इसलिए रोग एवं दुःख की उत्पत्ति होने पर विद्वान् पुरुष स्थित म किसी प्रकार की उदासीनता नहीं लाते है। उसे वे अपने कर्म का फल जान कर समभाव धीर धीरता के साथ सहन कर लेते हैं।

तिविहंश जा वि मे तन्य मचा भवठ अप्पा वा बहुया वा, मे तन्य गड्डिण चिद्धर, मोयणाए, तन्नो से एगया विपग्निमिदं सभूयं महावगरण भवठ, ते वि मे एगया दायाया विमर्यति, अदचहारी वा से हर, रायाणो वा से विलुं—
तंश दुस्संश मंठ विपग्नियासमुच ॥ ८३ ॥

अन्वयार्थः—इस संसार में कितनेक मनुष्य (निर्दिष्ट) तीन योग से धनोपार्जन करने के लिए कठिन परिश्रम करते हैं। इस प्रकार कठिन परिश्रम करने पर (अप्य) अल्प (वा) अथवा (बहुला) बहुत (वा वि) जो कुछ (से) उस धन की (मत्ता) (एवम्) किन्ती समय (से) धनोपार्जन करने हुए उस पुरुष के लांघानतरेण कर्म के उपयोगम से (निर्मित) भोग करने से बची

चिन्ता) यह जान कर हमने ऊपर जोय नहीं करना चाहिये। यद्यपि गृहस्थ से (जो) घोड़ा व्याहार (गायु) मिलने पर (जो) घोड़ा निरुद्ध न करना चाहिये। (गन्वाइया) गृहस्थ द्वारा निषेध करने पर अर्थात् 'मेरे गाँव मत आओ' इस प्रकार मना कर देने पर (गन्वाइया) उस गृहस्थ के घर से लौट जाय अर्थात् उसके घर में न जाय। (एव) इस प्रकार (जो) मुनि के बात को स्मरण करके कायस्थ करना चाहिये। - इति पूर्ववत् ॥ ८४ ॥

भावार्थ यह समझाओ जो जीत लने वाला पुरुष स्वस्वाधीर है। उसकी प्रशंसा इन्द्रादि देव भी करते हैं। यह पुरुष सगमा-
नशील न केवल 'वैश्या' न केवल 'होता' केवल 'उत्साह' के साथ सर्वसत्ता प्राप्त करता है।

यह भी जान लें कि 'वैश्या' गृहस्थ के घर पर (भिक्षा) के निर्वासन जाय तब उस गृहस्थ के पास शान योग्य सम्पूर्ण सामग्री के हानि होनी है। यह भी जान लें कि 'होता' भी पर शीघ्र न चर। यदि वह गृहस्थ घोड़ा दान दे तो साधु उसका नीन्धा न करे। 'वैश्या' गृहस्थ स्वयं पर लालच भी साधु का मना कर दे तो साधु उसके घर से तुरन्त लौट जाय। यह मुनि का व्यापार है। मुनि का हानि होना केवल 'वैश्या' के साथ प्राप्त करना चाहिये।

इति चतुर्थ उद्देशक समाप्त

वस्त्रों को तोड़ता है (तब) वेसे ही (संतो) कयायादि आन्तरिक वस्त्रों को भी तोड़ता है। यह (संतो) शरीर के अन्दर के (१६ देशाणि) अविद्य पदार्थों को तथा वेस भी अविद्यार्थों को (वस्त्र) देखता है तथा (पुनः) अलग-अलग (गताई) मलमूत्र आदि अविद्य पदार्थों को पहनने वाली इन्द्रियों को देखता है। अतः (वशिष्ठ) पण्डित पुरुष (वशिष्ठ) इस शरीर के स्वरूप को समझी तरह जाने ॥ ३३ ॥

सागरार्थः—तो नीचे वशिष्ठ और संसार के स्वरूप को जानने वाला पुरुष है वह इन बात को जानता है कि संसारी प्राणी कामयोग की वृत्ति के लिए नाना प्रकार के साधन कायं कर के उनका काम भोगने के लिए तथा संसार पक्ष में भूगते रहते हैं।

ज्ञानार्थः—साधनार्थों मनुष्य भय से ही पूर्ण रूप में प्राप्त होती है, दूसरे भयों से नहीं होती है। अतः इस विषय को जान कर तो विषयों मनुष्य विषय पदार्थों का त्याग कर देता है वही पुरुष इस जगत् में यास्तनिक गीर है तथा जो पुरुष इन्द्र और भाव दोनों प्रकार के वस्त्रों से स्वयं मुक्त होकर दूसरे तीनों को भी वस्त्रन में मुक्त होने का उपदेश करता है वही पुरुष गीर है।

इस तीनों के इन्द्रिय रूपों की वृत्ति है। उन से वे अलग-अलग अविद्य और दुर्गन्ध पदार्थ ही निकलते रहते हैं। वेसे अविद्य पदार्थों का पूर्ण रूप मनुष्य इन्द्र और शरीर के तत्त्व को जान कर पण्डित पुरुष इसमें राग नहीं करता है किन्तु वह शरीरादि समस्त पदार्थों से अलग त्याग कर शुद्ध संन्यास का प्राप्ति करता है।

य मद्रथ परमार्थ मा य इ लालं पञ्चामी, मा तेमु तिरिच्छयाणमावाण, कासंसे तलु अयं पुरिसे, चक्षुमाई कटेल मूद, पुणो नं कंठ लोहं धी वडुदे अण्णो, जमिणं परिकहिज्जइ इमस्स चेव पडिबुहण्णाय, अमरायइ महासड्डी यदुधमं तु वेदाण यपरिगण्ण कंदइ ॥ ६४ ॥

मे नं गं वृत्तमांशे आयागीयं समुद्राय नम्रा पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा ॥ ६६ ॥

अन्यथाभिः— (१) प्राणिनों की हिंसा के द्वारा निहिता का उपदेश देना अथवा निहिता करना पाप का कारण है या

(गणपति) समुद्राय नम्रा (२) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (३) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (४) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा

पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (५) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (६) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा

पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (७) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (८) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा

पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (९) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (१०) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा

पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (११) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (१२) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा

पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (१३) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (१४) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा

पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (१५) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (१६) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा

पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (१७) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (१८) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा

पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (१९) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (२०) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा

पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (२१) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा (२२) पानं कर्म मेव कृत्वा न कारयेज्जा



एक करती बाह्य : जिस क्रांति से दिया होती है तथा जिस कार्य का आचरण जानिगी ने निश्चित यत्नाया है उसका क्यापि आन-
 न्य न कर ॥

उद्देशों पापपाप मन्त्रि, चले पुन मिहं कामममगुणं अगमियदुम्ने दुस्मी दुस्मागमेव आवडं अणुपरिगृह
 ॥ १०८ ॥ निर्वर्ष ॥

अन्वेषणः (.) जो मनुष्य ज्ञानवान है उसने लिख (चं भो) उपदेश की आवश्यकता (लालि) नहीं है । (लालि) ज्ञान-
 वादी ॥ १ ॥ राम पुन से मर्षित और कदाचित् से भीष्टन (पुन) तथा (वात्सल्यपूर्ण) निगमनों को मनोहर मान कर उनमें
 आसक्त रहने वाला पुरुष ॥ १०८ ॥ निगमनों और कथाओं से उत्पन्न दुःख को ज्ञान नहीं करता है इम प्रकार (दुस्मी) शारी-
 रिक और मानसिक दुःखों से भीष्टन वह (दुस्मागमेव) दुःखों के आवड (अणुपरिगृह) तथा घुमता रहता है ॥ १०८ ॥
 (१०८ ॥) तथा से कहता है

साधकः जो मनुष्यपुरुष या रहने वाला है उस आवश्यक कहने है अथवा केवलज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों को जानने वाले
 साधक ॥ १०८ ॥ ज्ञान के द्वारा से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष ॥ १०८ ॥ ज्ञान के द्वारा से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष ॥ १०८ ॥
 ज्ञान के द्वारा से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष ॥ १०८ ॥ ज्ञान के द्वारा से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष ॥ १०८ ॥

साधक ॥ १०८ ॥ ज्ञान के द्वारा से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष ॥ १०८ ॥ ज्ञान के द्वारा से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष ॥ १०८ ॥
 ज्ञान के द्वारा से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष ॥ १०८ ॥ ज्ञान के द्वारा से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष ॥ १०८ ॥

॥ इति लोकविज्ञय नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

अन्यथाः—(क) यह पुरुष (आत्म) आत्मस्थान है (कर्म) ज्ञानवान् है (विषय) वेद अर्थात् आचारांगदि सूत्रों को जानने वाला है धर्मज्ञ है (कर्म) ब्रह्मज्ञ है । यह (पञ्चालेय) मति आदि धर्मों के द्वारा (लोक) लोक को (वीर्याण्ड) जनता है, यही (मूल) मूल मुनि (कर्म) कहलाने के योग्य है । (वर्मावस्था) यह धर्मवेत्ता है (बन्ध) मरता है । यह (आवर्तण संग) संसार रूप आयत्त और दान कर्म (आत्मज्ञान) जानता है ॥ १०७ ॥

भावार्थः—(क) आत्मस्थान ज्ञानवान् आदि उपरोक्त विशेषणों वाला मुनि है यह संसार के मूल कारण रागद्वेष को जान कर उन्हे छोड़ देता है । अतः ब्रह्मज्ञ म बड़ा विद्वान् और धर्मज्ञ है ॥

नीतिसिद्ध्यर्थं से शिरोमणि अरुणसिंह, फलमयं को वेणु, जागरंरोवरण, वीरे एवं दुक्खा पमुक्खमि, जराभञ्जु-वसोवणीए मार सयर्थं मूढे धम्मं श्याभिजाणुह ॥ १०८ ॥

अन्वयार्थः—(आशुक्लपण्डित) नीति और उच्छ को त्यागने वाला यानी नीति और उच्छ के कष्ट को सहन करने वाला (अरुणसिंह) असंयम में अस्ति और संयम में रति रखने वाला (क) यह (लिंग) निर्ग्रन्थ (कर्म) परीपह और उपलब्धि को पीढ़ा-कारी (लो) लो नहीं समझता है । (आण) यह पुरुष असंयम जीवन रूप मायनिद्रा को त्याग कर सदा जागृत रहता है । (वेणु) यह नेरुपाय से सदा निवृत्त रहता है । (एव) इस तरह (वीरे) वीर पुरुष (कर्म) मुखों से (मुक्खमि) छूट जाता है । (जराभ-ञ्जुवसीरुल्ल) जरा और मृत्यु के यश में जाने वाला (लो) पुरुष (कर्म) सदा (वै) मूढ़ है । यह (धम्म) धर्म को (श्याभिजाण्ड) नहीं जानता है ॥ १०८ ॥

भाषार्थः— त्रिमते आर्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार की स्थितियों को तोड़ दिया है ऐसा निमित्त न तो सांसारिक सुख को इच्छा करता है और न दुःखों से चपराता है किन्तु यह अनुकूल और प्रतिकूल सब परीषदों को समभाव पूर्वक सहन करता है। ऐसा हीर पुरुष भावनिद्रा का त्याग कर समग्र स निरन्तर रहता है। यह समस्त दुःखों से छूट जाता है ॥

योनिय आतुरे पाणे अप्पमत्तो परिच्यन्, मत्ता एयं मइमं पाम आरंभंजं दुस्समिणं चि मज्जा, माई पमाई पुण एड गन्धं, उव्वहमाणो महत्तंमु अंज मारगिभंगकी मग्गा पमुच्चह, अप्पमत्तो कामेहि, उवरओ पावकम्ममहि, वीरे आय- गुत्ते जे सेवगणे, जे पज्जवजायमन्थस्स मंगगणे म अमन्थस्स सेवगणे, जे अमन्थस्स सेवगणे से पज्जवजायमन्थस्स सेवगणे, अक्रममस्स ववहागे म विज्जह, कम्ममुणा उव्वही जायह, कम्मं य पडिलंदाण् ॥ १०६ ॥

अन्यार्थः— भाग्य से जागता हृष्टा पुरुष (आतुर) आतुर अर्थात् शारीरिक और मानसिक दुःख पाले हुए (गले) प्राणिमों का (प्राण) देख कर (अपमत्त) प्रमाद रहित बन कर (आतुर) मंगम का अनुष्ठान करे। शास्त्रकार कहते हैं कि (मत्ता) ते मति- मन (आतुर) भाग्य से मोये हुए जीवों की दुर्दशा को देखो। (एव) यह (मत्ता) मान कर भाग्य से मोने का निवार मान करो। (इमे) यह जो प्राणिमों से जाना प्रकार का (दम) दुःख देखा जाता है यह (आरंभजं) आरम्भ जनित है (इ) ऐसा (लगा) समझ कर, आरम्भ रहित बनने का प्रयत्न करो। (माई) मायावी और (पमाई) प्रमादी पुरुष (पुण) प्रमादी पुरुष को (एड) प्राण दोना है। (मज्जा) शब्द और रूपादि विषयों से (अव्वहमाणो) समग्र से रहने वाला जीव ही (अंज) वास्तव में सरल है तथा (मारगिभंगी) मृत्यु से शंका रहने वाला पुरुष एसा प्रयत्न करता है, कि (पुच्चह) यह मृत्यु से ही छूट जाना है। (कामेहि) जो

अन्यथाऽर्थः—(जं) जो (कर्मफल) कर्म का मूल कारण है उसे (य) और (कर्म) किंसा को (गोप्येति) जान कर रगग देये । (गर्भ) पुनर्जित स्वसदन उपदेष्टो को (गमायान) प्रवृत्त करके (अंगेति) राग और क्रोध (क्षीर्षि) मोनों के साथ (अदिरगमणो) दिखाई न देना हुआ अधोग राग क्रोध में लिप्त न होना हुआ (महान्) युजिमान् पुरुष (मं) कर्म और समोक्ष को (पणिणाय) रगग कर तथा (मोर्गं) समोक्ष में कर्म हुए लोक को (निरा) जान कर वर्ग (लोपणान्) लोक संज्ञा को अर्थात् नियमभोग तथा कर्मायों को (वत्ता) छोड़ कर (पराकर्मिन्तर्भावा) स्वयम्भ का अनुष्ठान करे । (निर्भेद) संस्था में कहता है ॥ ११० ॥

नोट — "यथाहं य न दृग् गोप्येति" के स्थान पर "कस्मादाह्वय नं कर्मा य" ऐसा वाक्यान्तर भी देया जाता है । शिष्टका को इस प्रकार है—
(जं) जिस (फल) क्षण में (पद्म) कर्मोपदेष्ट हो उमी क्षण में (याह्वय) उसकी नियुक्ति करनी चाहिये अर्थात् अज्ञान और प्रमाद-यथा जिस क्षण में कर्मोपदेष्टनकारक कार्य हो जाये उसी क्षण में स्वायश्चान होकर कर्म के कारणों की नियुक्ति कर देनी चाहिये ।

भाषार्थः—(सम्यग्ग, आगिरान, प्रमाद, कर्माय और योग ये कर्म के मूल कारण हैं । इनसे जान कर नियेकी पुरुष इनका त्याग कर जंग और शुद्ध रागम क अनुष्ठान में प्रयत्न करे ॥

॥ इति शीतांष्णीय अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

प्राण के समान बन्धन करने वाले हिंस्रानि पालों को (लम्बे) रखना पड़े। (आरंभ-काली) जो पुरुष आरम्भ में जीवन् मर्त्यता करता है वह (नयनमन्त्री) तमपानुमूर्ति अर्थात् शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी होता है। (कामेय) काममोनों में (मित्र) सामक, जीव (मित्रता) वसी न। सत्त्व (कर्म) करने हैं। इत्य प्रकार (मित्र-भावना) वसी के रीत्य में भाई वने हुए प्राम्नी (पुत्री) पार २ (मित्र) मधेयस्य को (द्विज) प्राप्त होने हैं ॥ २ ॥

मार्गार्थः काममोनों में आसक्त बन हुए जीव हिंस्र नाति नाना प्रकार का पापाचरण करने हैं जिसमें नागर गर्भनाम ने प्राप्त हुआ है व्योम शारीरिक और मानसिक दुःखों में दुःखित होने रहने हैं। अतः नृदिमान पुरुषों को विनयमोनों में आसक्त न होने चाहिये ॥

अपि मे हासयामञ्ज, हंने मंदीनि मगमहे । अले बालम्भ मंगिण, नेर नदुहके अपमो ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः (१) यह विषय भी (हासयामञ्ज) हास्य के निरूप (हंने) अथि जीवों को मार कर भी (मंदीनि) उसे एक लीला (मगमहे) मानना है। मर्या कर यह अस्वानी तीव्र प्राणियों के साथ स्वयं ही (अमो) अचना (नेर) घेर (नदुहके) नष्टाना है। अतः (न-मर्या) मर्या परत अस्वानी तीव्र का (मगमहे) स्वयं ही न करना चाहिये ॥ ३ ॥

मि-वार्थः नृप-म-हासयामञ्ज तीव्र अपन हास्य लीलाय म्भ मन्त्रोपनोदार्थ जीवों को हिंस्र करने हैं। ये अस्वानी स्वयं ही न प्राणियों + मान अपनक-म-म व निम अपन मर नष्टान हैं। अतः विषयकी पुरुषों को ऐसा करायि न करना चाहिये।

नष्टा अर्शवज्जो परमनि भव्त्वा, आपंकदंभी म कंद पावं ।

अमं य मुनं य विमिन धीरे, पलिच्छ्रदिया मं निमकम्यदंभी ॥ ४ ॥

मे वंता कोहं य मागं य मायं य लोभं य, एवं पापमस्म दंभं, उवरयमन्यस्म पलियंनकरस्म, आगगं मगडन्मि ।

अन्यथाथः— जो पुरुष शास्त्रीक मीनि में संगम का अनुष्ठान करता है (स) वह (बोह) कोध (माण) मान (मायं) माया

(य) और (लोभ) लोभ को (यत्) जीव ही नष्ट कर देता है मय, यह (दंभं) उपदेश (उवरयमन्य) शत्रु से निवृत्त और (पलियंनकरस्म) कामें पथ मन्दार क) अन्त करने वाले (पापम) सर्वत तीर्थंकरों का है (आगग) आदित अर्थान् हिंसा आदि पापमों का त्याग करने वाला पुरुष (मगडन्मि) अपने कर्मों का नाश कर देता है ॥ १२२ ॥

भावार्थः— जो पुरुष शास्त्रीशास्त्रि सहित होकर संगम का पालन करता है वह कोध मान माया लोभ का सब करके मगं गगडं कर्मों का सब मोक्ष को प्राप्त हो जाता है, ऐसा केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर भगामी ने कहा है ॥

जे मगं जागड मे मन्व जगड, जे मन्व जगड मे एगं जागड ॥ १२२ ॥

अन्यथाथः— जो (म) परमाणु आदि द्रव्यों में से किसी एक को (जगड) जानता है (मे) वह (मन्व) नृसार के समस्त पदार्थों को (जागड) जानता है (जे) जो (मव) संसार के समस्त पदार्थों को (जागड) जानता है (मे) वह (एगं) एक पदार्थ



अथ चत्वारिंशोऽध्यायः । तन्तानुबन्धो ह्येष का लय काला ह्यथा त्वमेव भी दर्शनमोह आदि का
लयात् । अथ चत्वारिंशोऽध्यायः । तन्तानुबन्धो ह्येष का लय काला ह्यथा त्वमेव भी दर्शनमोह आदि का

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः । तन्तानुबन्धो ह्येष का लय काला ह्यथा त्वमेव भी दर्शनमोह आदि का
लयात् । अथ चत्वारिंशोऽध्यायः । तन्तानुबन्धो ह्येष का लय काला ह्यथा त्वमेव भी दर्शनमोह आदि का

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः । तन्तानुबन्धो ह्येष का लय काला ह्यथा त्वमेव भी दर्शनमोह आदि का
लयात् । अथ चत्वारिंशोऽध्यायः । तन्तानुबन्धो ह्येष का लय काला ह्यथा त्वमेव भी दर्शनमोह आदि का

1
2
3
4
5

से ॥ गच्छ गच्छ हरे जाय । (लोकोत्थेभ्यः) लोकैषणां (लो वरे) न करे ॥ १८० ॥

भावार्थः—सद्यः दशैं को प्राप्त करके उसके अनुकूल कार्य न करना उस सम्बन्धार्थन को क्षिपाना है अतः विवेकी पुरुष नेमा न कर तथा मिथ्यादर्शियों के समर्थ से उसका त्याग भी न करे । अस्तु के यथार्थ स्वरूप को जान कर मनोह्र और अमनोह्र शास्त्रादि विषयों में रागद्वेष न करे किन्तु समस्त पदार्थों में समभाव रहे ।

तस्मै लुब्ध इषा खाद्रे, अण्णां तम्म कथ्यो मिया ? दिदुं सुयं मयं विण्णायं जं एयं परिकहिज्जइ, ममेमाणां पल्लमाणां पृणां पृणां जाइ पक्ख्योनि ॥ १८८ ॥

अन्वयार्थः (तस्मै) जिस मोक्षार्थी पुरुष की (इमा) यह पूर्वोक्त लोकैषणा (काई) वासि-युद्धि (लुब्धि) नहीं है (तस्मै) उसकी (अण्णा) दुर्गम साधन आग्रह में प्रवृत्ति (कथा) कैसे (मिया) हो सकती है ? (एव) यह (व) जो (परिकहिज्जइ) मेरे द्वारा कहा जा रहा है वह (दिदुं) सर्वज्ञ के द्वारा देखा गया है और (मयं) भवक्षार्थियों द्वारा सुना गया है तथा (एव) अथ्य जीवों द्वारा मनन किया गया है और (विण्णायं) विशेष रूप से जाना गया है । (ममेमाणां) जो पुरुष मनुष्य आदि जन्मों में अल्पमत्त आसक्त हैं और (पल्लमाणां) मनोह्र इन्द्रियसुख में तल्लीन हो गये हैं वे (पृणां पृणां) बारबार (काई) एकैन्द्रिय आदि ज्ञाति को (पक्खति) प्राप्त करते हैं ॥ १८८ ॥

भावार्थः—मनोह्र विषयों में राग और अमनोह्र में द्वेष करना लोकैषणा कहलाती है । इस लोकैषणा के द्वारा जीव मोहित हो रहे हैं और इसी से प्रेरित होकर प्राणी जाना प्रकार के कार्यों में मग्न होते हैं किन्तु जिस ज्ञानी मोक्षार्थी पुरुष ने इन लोकैषणा को मत्सारधमण का कारण जान कर त्याग दिया है उसकी साक्ष्य कर्मा में कभी भी प्रवृत्ति नहीं होती है ।

भालस एव रोगा, असखाया अणुपुण्यसो । अहं खं कुमंति आर्यका, जासा य असमंजसा ॥

मरत्यं नमि मंपेदाए उववायं चवणं य खुब्बा धरियाणं य संपेदाए ॥ १७२—१७६ ॥

अन्वयादर्थः— (अणुपुण्यसो) सबों और मोक्ष तथा उनके कार्यों को एवं संसार और उसके कार्यों को जानने वाला (के) अहं (जो) मनुष्य (१६) इस मनुष्य लोक में (जाते) मनुष्यों के प्रति (साक्षात्) धर्म का उपदेश करता है । (अस) जिस मनुष्य को (जानने) वे (जादा) पदेन्द्रिय आदि अस्तिता (जन्य) सब प्रकार से (मुनिहोदियायो) अच्छी तरह ज्ञान (अवधि) होती है (के) न (कहे) अणुपुण्य (जो) ज्ञान एवं धर्म का (साक्षात्) कथन करता है । (मनुदियाल) धर्मावस्था करने के लिए तापर (लिखित-रत्न) आनिवो को इष्ट देने का त्याग किये हुए (स्मादियाल) तब और संयम में मनुष्य और (अणुपुण्यताल) उच्च ज्ञान समग्र (१७) उव पुण्यो का (१८) के तीर्थभूत का मनुष्य आदि (मुनिपुण्य) मुक्तिप्राप्त का (१९) उपदेश करते हैं । (एवं) ज्ञान प्रकार तीर्थभूत आदि के उपदेश का गुण का (२०) कोई (मायेता) मदान्दीर पुण्य (२१) इस लोक में (किरस्म्यति) कर्म करी श्रुत्यों का पराक्रम करते हैं । (अन्यथा) संयम में बने रहने हुए (अन्यथा) आत्मकदवाय की बुद्धि से दक्षित (२२) किन्हीं पुण्यों को (अन्य) देखो । वे संयम के अनुष्ठान से जिस कारण से बने रह पाते हैं (२३) उसे (अन्य) में बताता हूँ । (अन्य) जैसे (अन्यथा) कर्म के पत्तों से ही के हुए (२४) लालाच में (अन्यथा) चरने चिन्ता को अनाया हुआ (अन्य) कसुमा (२५) उसके (अन्यथा) ऊपर जाने के लिए निवृत्त को (ले जा) ज्ञान नहीं करता है तथा (अन्यथा) जैसे मनुष्य (अन्यथा) अपने स्वयं को (जो नहीं) नहीं छोड़ते हैं (अन्य) एही तरह (२६) कोई पुण्य (अन्यथा) अनेक प्रकार के (अन्यथा) कुलों में (अन्यथा) अपने स्वयं के (अन्यथा) अपने विषयों में (अन्यथा)

आवृत्त हुए (कृत्तुर्गं भणति) कदम नचन करने हैं किन्तु (य) य (गिग्यायय) अरु पुग्गो प्राप्त नहीं करते हैं । (अह) अय (गेहि) उन (कुरेहि) कुलो में (आयगाए) अपने कर्मों का फल भोगने के लिए (आया) उत्पन्न हुए पुग्गो को (ला) लेलो । (नंश) कोई मगवी अथवा गगदमाला के रोग से युक्त है (अहया) और (ओओ) कोई कोनी है (साल्नी) कोई राज-वहमा यानी श्रय रोग वाले और (अयसाथिय) कोई अवरुमार यानी मृगी रोग युक्त होते हैं । (कालियं) कोई कागा (ला) और (मिगयं) कोई उड़ (कुलाय) कोई हस्तकटा यानी एक हाथ कटा हुआ और एक पैर कटा हुआ (यिज्यं) कोई शोधयुक्त शरीर वाला (य) और होता है । (सर्हि) कोई यात इयाधि के कारण बड़ा पैर वाला (ययं) कोई मूक-पूंगा (सलीयं) कोई शोधयुक्त शरीर वाला (य) और (मदुमेहणि) कोई मस्मक रोग से युक्त होता है । (केह) कोई कम्प युक्त शरीर वाला (ओरगयि) कोई पीठवर्ति यानी पीठ के बल रेंग कर चलने वाला (ययं) लकड़ी गड़गड़ कर चलने वाला (गिलियं) कोई श्लीपद रोग से युक्त (य) और (मदुमेहणि) कोई मधु-प्रमेह रोग से युक्त होता है । (प) ये (गोलम) स्नेहल (रीम) रोग (अणुपुय्यो) कमलः (अयसाया) कहे गये हैं (यय) इन्हें लेलो । (अह) ये (आयका) आनष्ट और (आयतमा) जीवन को शीघ्र नष्ट करने वाले शूल आदि रोग (य) और (गागा) दूसरे दुःख (कुयंति) प्राणियों को उत्पन्न होते हैं । (गिहि) उनके (मगं) मरग को (गेहए) देख कर (य) और (अगायं) उत्पत्ति (य) तथा (नगं) व्यवधान को (लहला) जान कर तथा (गिहमा) कर्मों के परिणाम को (गेहए) देख कर ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे पूर्वोक्त रोगों का स्थान और दू ली वा भोजन न होना पड़े ॥ १८० ॥ १८६ ॥

भावार्थः नोपष्टु अमयान न मासाभ्य कवली अथवा दूसरे अतिशय यानी या अतकेपली धर्मोपदेश देते हैं । यणपि ये

...

...

आप दृष्ट दया, अ सर्णिणहास्यमथस्म संयण्ये से भिक्खु कालण्ये वलण्ये मायण्ये सुखण्ये विणयण्ये समयण्ये
वारगाह समभायमाण कालेण उट्ठाई मयदिण्ये दुहमो द्विचा वियाद ॥ २०६ ॥

अ० व० य०

१. भिक्खु की वलमान वाल शान्त क ज्ञान में (गदण्ये) निपुण है (२) वट (काष्ठण्ये) अथसर को ज्ञानने वाला (वलण्ये) गता को
ज्ञानने वाला (३) मया याना वलमाना को ज्ञानने वाला (काल्ये) तल को ज्ञानने वाला (विण्ये) विनय को ज्ञानने वाला
(४) समय की ज्ञानने वाला है (५) परिघट पर (अस्माध्याये) समरथ न करता हुआ (काले) काल से (उट्ठाई) उठने
वाला (६) मयदिण्ये वलमाना की प्रकार के विषयों से रहित (प्राची) गाम और आश्रयन्तर दोनों प्रकार के कथनों
की (७) संवत्सर वर (८) समय समग में समन करता है ॥ २०६ ॥

भाषाण्यः -- भिक्खु के आश्रय संवत्सर को ज्ञानन वाला शान्त है रहित पुरुष गाम अथस्याधो से प्राणियों का दया ही करता है ।
काल वल परमाणु, वल विनय और समय याना आगम को ज्ञानने वाला गाम पुरुष किसी भी वशार्थ पर समय प्राप्त न रखता
हुआ भवम माग में भलीभांति विचरता है ।

तं भिक्खु सीयकासपरिवमसाधगायं उवमं क्वमिषा गाहावई पूया-आउसंतो समणा ! खो खलु ते गामयम्मा
उज्जावंति ! आउसंतो गाहावई ! खो खलु नम गामयम्मा उज्जावंति, सीयकासं य खो खलु भदं संचायमि अदियासि-
णय, खो खलु ये कप्पर अगविकायं उज्जालिणय वा वज्जालिणय वा कायं आसविणय वा कयादिणय वा अणवेसि

राय का सेवन करना मुझे नहीं कल्पता है (निश्चय) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २०७ ॥

अ०
प०
२३०

भाषार्थः—शीतकाल में गर्मी के कारण यदि किसी मुनि का शरीर काँप रहा हो तो उसे देखा कर यदि कोई गृहस्थ मुनि से यह पूछे कि हे मुने ! व्यापका शरीर क्यों काँप रहा है ? क्या आपको विषय तो नहीं सता रहा है ? तो मुनि उस गृहस्थ को स्पष्ट उत्तर दे कि हे देशानुग्रिय ! मुझे विषय नहीं सता रहा है किन्तु ठण्ड से मेरा शरीर काँप रहा है । मुनि के इन वचनों को सुन कर यदि वह गृहस्थ व्यक्ति जला कर सापु के शरीर को ताप देता पादे तो मुनि उससे बड़े कि हे देशानुग्रिय ! स्वर्ग व्यक्ति को प्रत्यक्षित करना और वसुके द्वारा शरीर को ताप देना मुझे नहीं कल्पता है इसी प्रकार दूसरों में व्यक्ति प्रत्यक्षित करवाना भी मुझे नहीं कल्पता है क्योंकि अप्रियसेवन करना हम सापुओं के व्यापार के विरुद्ध है । इसलिये मैं व्यक्ति सेवन नहीं कर सकता हूँ ॥

॥ इति आठवें अध्ययन का तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

पञ्चम उद्देशक में अन्तःप्रत्ययान का कथन किया गया है । इस छठे उद्देशक में इगित-भारण का कथन किया जाता है—
 जे भिक्खु पंगेण वन्धेण परिमुमिण पायविर्णिण, तस्स रं रं पंगे मच्च विद्रयं वत्थं जाइस्सामि, ते अइस्सणिज्जे
 वन्ध जाइज्जा अदापरिगमहिं वन्धं धारिज्जा जाव गिम्हं पठियण्णे अदापरिगुण्णं वत्थं परिट्ठविज्जा, परिट्ठविचा अदुवा
 अचंले सापविं आगममाणे जाव सम्मचंमंभ सममिज्जाणिया ॥ २१५ ॥

अन्वयार्थः—(१) जे (निम्न) साधु (गण, एक (कयेण) पाता छोर (पावविर्णिण) दूसरा पात्र इनके साथ (परिमुमिण) रहता
 है (अन्तःप्रत्ययान) उसको (१५) पंगेना विचार (गो अन्तः) नहीं होता है कि मैं (विच) दूसरे (वत्थं) वस्त्र की (जाइस्सामि) याचना करूँगा ।
 मे। गट (अद्विगलज्ज) वपण्ण के अनुसार (कय) वस्त्र की (धारजा) याचना करे छोर (अदापरिगुण्णं कय) जैसा पात्र प्रदण किया गया
 है अर्थात् (मिज्ज गदा) है वैसा ही (धारजा) धारण करे (जाव) यावत् तब ग। देखे कि शीघ्र प्राप्त चली गई है छोर (गिम्हं) प्रीत्य
 अदु (१५-वत्थ) आगम है तब यह (अदापरिगुण्ण) जीणे (कय) वस्त्रों को (परिट्ठविजा) त्याग देवे । (अदुवा) अथवा (एगसाहे) व। क्रमशः
 एक वस्त्र पात्रा (अदुवा) तथा (अवेहे) वस्त्र रदित होकर (सापविं) अपने आप को छत्रु (आपण्णणे) वनाता हुआ (जाव) यावत्
 (सम्मचंमंभ) स्वयंकर के (सममिज्जाणिज्ज) धारण करे ॥ २१५ ॥

भावार्थः—जिस साधु का यह नियम है कि—एक वस्त्र छोर एक पात्र को धारण करते करते—

साधयिषं यागममाणं, तवं मे अधिममणागण् भवइ । जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अमिसमिञ्चा सव्वथो सव्वसाए
मम्ममममम ममभिज्जाश्रिया ॥ २१७ ॥

अन्यपार्थः—(६) यह (अथ) साधु (या) ब्रधया (भिरुण्णे) साध्वी (अणुन (गणं) पानी (कार्म) छादिम (कार्म)

स्थानम । आदाधाला) यह चार प्रकार का आहार करना हुआ (आवाण्णाले) स्वाद लेने के लिए आहार को (वाम्भी) धार्य (इणुयम्भी)
हनु यानी दाढ़ स (दण्डण) दलित यानी दाहिनी (इणुय) दाढ़ की ओर (णो संचारिजा) संचारित न करे । तथा (आवाण्णाले) स्वाद
लेने के लिए (दण्डण्णाला) दाहिनी (इणुयम्भी) दाढ़ से (वाम) धार्य (इणुयं) दाढ़ की तरफ (णो संचारिजा) संचारित न करे । इस प्रकार
(६) यह साधु (अणुयम्भी) स्वाद न लेता हुआ आहार करे । (अथविध) अपने कर्मों को लघु (आण्णम्भी) बनाता हुआ स्वाद न
लेकर आहार करे । जो साधु स्वाद न लेकर आहार करता है (६) उसे (तमे) तप की (अभिचमणणए मम) प्राप्ति होती है । (ज) जो
(९७) यह (भगवन्) भगवान् ने (पवेइय) करमाया है (तमेव) उसी को (अभिचमिवा) वधायें जान कर (सव्वथो) सब प्रकार से और
(मम्मममम) स्वर्गमम भाव से (मम्मममम) समभाव का ही (ममभिज्जाश्रिया-अभिजाश्रिया) पालन करे ॥ २१७ ॥

भाषार्थः—साधु या साध्वी आहार करते समय स्वाद लेने के लिए आहार को धार्य दाढ़ से दाहिनी दाढ़ की ओर तथा
दाहिनी दाढ़ से धार्य दाढ़ की ओर संचारित न करे किन्तु गृदिभाव रहित होकर आहार करे । इस प्रकार गृदिभाव रहित आहार
करने से उसे तप की प्राप्ति होती है और कर्मों का पुण्य होकर लघुणा प्राप्त होता है । ऐसा साधु सर्वत्र सब प्रकार से समभाव रखता
हुआ विचरे ॥

पुत्राणं आहारं संवद्विज्ज्ञा, संवद्विज्ञा कमाए पयणुए किञ्चा समादियन्चे फलगावयद्वी उट्ठाए भिक्खु अभिणिण्डुल्लन्चे, अणुपविमिप्पा मामं वा खयरं वा जाव रायहाणि वा तणाइं जाइज्जा जाव संयरिज्जा, इत्येवि समए कायं य जोगं य ईरिय य एल्लक्खराइज्जा, नं मज्जं सत्त्वापारि ओए तिण्णे छिएण्णकंदकंदे आइयद्वे अणारिए चिन्वाणं भेररं कायं संविह-
लिय विरुवत्तव परीसहोवसमग अस्मि विस्ममणए भेरवमणुचियेणं तत्थावि तस्स कालपरियाए, से वि तत्थ विरयतिफारए, इत्थंयं विमोहागवर्णं दियं सुइं सुमं शिस्सेमं आणुगाग्रिये सि वेमि ॥ २२३ ॥

अन्वयपार्यः—(आल ल) जित (जिअल) साधु के नाम में (एवं जना) इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है कि (लज्जु) निघट्ट ही (इत्थं) समग्र में (अ) में (एवं) इस (लोलं) अपने शरीर का (अणुपुण्णं) क्रमशः (अविहितए) निर्पाद करने में (निष्ठा) श्रान्ति को प्राप्त होता है । (क) लल (अणुपुण्णं) क्रमशः (आहारं) आहार का (संवदिग्गं) स्थाप करदे तथा (जल्ल) कयावो को (एल्ल) पतना (किक्का) करके (अपारिक्खे) शरीर के स्थापार को नियमित करे अथवा अपने विचारों को समाधिस्थ करे । (जुअ) पण्डितमाल के लिए उत्पन्न होकर (अणुपुण्णं) काठ के पाटे की तरह निम्न होकर (अभिणिण्डुल्लं) शरीर के समस्त से रहित होने की दृष्टि वाला (जिअ) साधु (नाम) प्राप्त (ना) अथवा (अवर्) नगर (अल) पापत् (राधाकिं) राजधानी में (अणुपविमिप्पा) प्रवेष्ट करके-आकर (नल्ल) लज्जो की (आदग्गं) याचना करे (अल) वाचत् लज्जो की याचना करके उठे (संवदिग्गं) विधिपूर्वक विज्ञाये । (लल्लं) उस (अल्ल) समग्र में (आवो) शरीर (का) शीर (अवो) जोग (अ) —————

पादा और आश्चर्यन्तर परिग्रह को (विराजो) ज्ञान कर एवं त्याग हट (अणुपुष्पी) अनुक्रम से संयम की क्रियाओं का पालन करके (संनय) पथायोग्य मरण का निश्चय करके (कारभायो-कर्मण्यो) आरम्भ से अथवा कर्मों से (विजय) छूट जाने हों ॥ २ ॥

भाषार्थः—बुद्धिमान समयों पुरुष यथाक्रम से संयम की क्रियाओं का पालन करके अन्तिम समय में भक्तपरिष्ठा, ईशितमरण और पापपोषगमन इन तीन मरणों में से में जिस मरण के योग्य हों, यह निश्चय करके प्रती मरण द्वारा समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर आरम्भ से निवृत्त हो जाते हैं और अनुक्रम से कर्मों से छूट जाते हैं ॥

कसाए पयणुए किञ्चा, अण्पादारे तितियसुए । अह भिक्खु गिलाइज्जा, आहारस्सेव अंतियं ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—यह साधु (कसाए) कथाओं को (पयणुए) पतला (किञ्चा) करके (अण्पादारे) अल्प आहार करे । यदि कोई कठोर पचन कहे तो उन्हें (तितियसुए) सहन करे । (अह) यदि इस प्रकार करता हुआ (भिक्खु) साधु (गिलाइज्जा) आहार के बिना ग्लानि को प्राप्त हो तो भी (आहारस्सेव) आहार के (अंतिय) पास भी न जाये अर्थात् आहार की इच्छा न करे ॥ ३ ॥

भाषार्थः—भक्तपरिष्ठा आदि त्रिविध मरण में में (कमी एक मरण को प्राप्त करने के लिए उक्त हुआ) साधु पहले कथाओं की संलेखना करे अर्थात् कथाओं को पतला करे । कथाओं को पतला करता हुआ साधु आहार की मात्रा को भी पटाता जाय और बहुत थोड़ा भोजन करे । ऐसा करते हुए यदि सुधापरिषद् अधिक सत्वात् को भी साधु आहार की इच्छा न करे अर्थात् वह यह न सोचे कि “मैं योंही दिन और आहार का हूँ फिर संलेखना करूँगा” ।

नोटः—इस गाथा में “आहारसंयम अंतिय” यह पद दिया है किन्तु इसमें आगे हुआ भी क्रिया पर नहीं दिया है । इसलिए वाक्य की पूर्ति के लिए यदि ‘न गच्छेत्’ क्रिया का कथ्याहार किया जाय तब तो इस वाक्य का सही अर्थ होगा जो

विदुष्यं ॥ ८ ॥

मार्गदर्शक, तद्वै नृत्य-विद्यालय । मार्गदर्शक, मार्गदर्शक विदुष्यं ॥ ८ ॥
 मार्गदर्शक, मार्गदर्शक विदुष्यं ॥ ८ ॥

मार्गदर्शक, मार्गदर्शक विदुष्यं ॥ ८ ॥
 मार्गदर्शक, मार्गदर्शक विदुष्यं ॥ ८ ॥

मार्गदर्शक, मार्गदर्शक विदुष्यं ॥ ८ ॥
 मार्गदर्शक, मार्गदर्शक विदुष्यं ॥ ८ ॥

मार्गदर्शक, मार्गदर्शक विदुष्यं ॥ ८ ॥
 मार्गदर्शक, मार्गदर्शक विदुष्यं ॥ ८ ॥

मार्गदर्शक, मार्गदर्शक विदुष्यं ॥ ८ ॥
 मार्गदर्शक, मार्गदर्शक विदुष्यं ॥ ८ ॥



पृथ्विं य आउकायं य, तेउकायं य वाउकायं य । पणगादं वीगहरियादं, तसकायं य सव्वसो खुच्चा ॥१२॥
 पण्णादं मंनि पड्डिनेहं, चित्तमंणादं मे अभिएणाय । परिवअिय विहरित्था, इय मंखाय से महावीरि ॥१३॥

अन्यथाभिः—पृथ्वीकाय (आउकायं) अलकाय (तेउकायं) वायुकाय (पणगादं) पनक (वीगहरियादं) नीला, हरित (०) और (तसकाय) प्रमकाय को (गम्यो) सर्व रूप से (गात्वा) जान कर (य) तथा (एयादं) ये सब (विपगंतादं) सञ्चित गये हैं (मंनिः) एवमभिचार कर (य) और (अभिगणाय) समझ कर तथा (मे) इनकी हिंसा से पाण लागता है (इय-इह) ऐसा (तंगाय) जान कर महावीर प्रमथान महारीर स्वामी (विहरित्थ) इनकी हिंसा का त्याग करके (विहरित्था) निचरते थे ॥ १२-१३ ॥

मायभिः—प्रमथान महावीर स्वामी पृथ्वीकाय, अलकाय, तेउकाय, वायुकाय, पनरूपिकाय और प्रमकाय इन छहों कार्यों को जेतन जान कर इनका प्रारम्भ अर्थात् हिंसा न करने हुए विचरने थे ।

अदु धायरा य तमत्ताण, तमा य थायरत्ताण् । अदुवा सव्वजोणिया सत्ता, कम्मणा कल्पिया पुढो चाला ॥१४॥

अन्यथाभिः—(कम्मणा) कर्म से यानी कर्मों के पत्नीभूत होकर (थायर) स्थावर जीव (तंगण) प्रस रूप में परिणत होते हैं (अदुवा) अथवा (त्ता-तमत्ताण) प्रस प्राणी (गायत्ताण) स्थावर रूप में परिणत होते हैं (अवुका) अथवा (सव्वजोणिया) सर्व जोनि वाले (चाला) अदानी (पणा) जीव-कर्मों के पत्नीभूत होकर (पुढो) मित्र मित्र योनियों में (कल्पिया) परिवर्तित होते रहते हैं ॥ १४॥

मायभिः—कर्मों के पत्नीभूत होकर प्रस जीव पृथ्वीकायादि स्थावर योनियों में और स्थावर जीव प्रस योनियों में उत्पन्न होते हैं । प्रमथान स्वामी योनि प्राप्त होने से युक्त होकर अपने किये हुए कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न योनियों में उत्पन्न होते रहते हैं ।

पुद्गलं च आमुक्त्यं च, नेतुक्त्यं च वाटुक्त्यं च । पणमाहुं वीगहसिंहं, तसक्त्यं च सव्यसो गजना ॥१२॥

तपारं गंगि वट्ठिहं, चिन्नपंनारं मे अभिगमाय । परिव्रज्य विहरित्या, इयं गङ्गाय से महावीरि ॥१३॥

अन्तर्यामिन्: १३३ गृह्णीकाय (या०३०) अल्काय (गो३३०) तैत्तकाय (गंगा३०) पनक (वीरदरिणार)
 नीत द्रविम (०, दोर (०३३०) अमकाय को (न०३०) मयं द्य मे (ल०३०) जान कर (०) नभा (ग०३०) ये मय (गि०३०) सच्चि
 म ० ३ (०३०) ग३३३ गि३३३ कर (०) दोर (०३३०) मयम कर नभा (०) इनसी हिंसा मे गाय लगता है (१०-३३) पेसा (गं०३०)
 जान कर म३३३) गगनाय ग३३३३ दगामी (ग३३३३३३) इनसी हिंसा का रयाग करके (गि३३३३) निजस्ते श्रे ॥ १३-१३ ॥

भाषाभिः साहित्येभ्यः कृतीनां, अथवा, नैदकाय, यागुकाय, भगवत्किंकाय और भगवत्काय इन चारों कागों का जलन नाश कर दिया न करने हुए विचारने की ।

नमः शिवाय न नमनाम् । नमो न श्रान्तनाम् । नमो नम्यजोगिन्या मन्त्रा, कम्पुणा कल्पिया पुढो वाला ॥१४॥

[illegible]

भावार्थ: कर्मात्मान होकर प्रथम जीव प्रणीकायादि स्थावर योनियों में और स्थावर जीव प्रथम योनियों में उत्पन्न होते हैं।

पुढविं य आउकायं य, तेउकायं य वाउकायं य । पणगाइं वीयहरियाइं, तसकायं य सव्वतो गुल्वा ॥१२॥
एयाइं संति पडिलेहं, चित्तमंताइं मे अभिएणाय । परिवज्जिय विहरित्था, इय संखाय से महावीरि ॥१३॥

अन्यथार्थः— (पुढविं) पृथ्वीकाय (वाउकायं) अलकाय (तेउकायं) वायुकाय (पणगाइं) पनक (वीयहरियाइं) चीजा, हरित (य) और (तसकाय) व्रमकाय को (मय्यो) सर्व रूप से (सत्त्वा) जान कर (य) तथा (एयाइं) ये सब (चित्तमंताइं) सन्निच (मनि) हैं (गिल्हेहं) ऐसा निचार कर (य) और (चित्तमंताय) समझ कर तथा (मे) इनकी हिंसा मे पाप लगता है (इय-इह) ऐसा (संखाय) जान कर (महावीर) भगवान् महावीर स्वामी (गिल्हेहं) इनकी हिंसा का त्याग करके (विहरित्था) निचरते थे ॥ १२-१३ ॥

भावार्थः—भगवान् महावीर स्वामी पृथ्वीकाय, अलकाय, वायुकाय, तेउकाय, वायुकाय, पनसत्तिकाय और व्रसकाय इन द्रव्यों कायों को चेतन जान कर इनका आत्म भ्रम हिंसा न करते हुए विचरते थे ।

अद्वावरा य तमत्ताए, तमा य थावरत्ताए । अद्वा सव्वजोणिया सत्ता, कम्मणा कप्पिया पुढो चाला ॥१४॥

अन्यथार्थः—(कम्मणा) कर्म मे यानी कर्मों के पक्षीभूत होकर (थावरा) स्थावर जीव (तंगणए) व्रस रूप में परिणत होते हैं (अद्वा) अथवा (तमा-तमत्ताए) व्रम प्राणी (थावरत्ताए) स्थावर रूप में परिणत होते हैं (अद्वा) अथवा (सव्वजोणिया) सर्व योनि चाले (चाला) अमानी (वणा) जीव-कर्मों के पक्षीभूत होकर (पुढो) भिन्न भिन्न योनियों में (कप्पिया) परिवर्तित होते रहते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थः कर्मों के पक्षीभूत होकर व्रम जीव पृथ्वीकायादि स्थावर योनियों में और स्थावर जीव व्रस योनियों में व्रम होते हैं । अथवा सभी योनि चाले जीव रागद्वेष से युक्त होकर अपने किये हुए कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न योनियों में उत्पन्न होते रहते हैं ।



प्रद्विं य आउकायं य, तेउकायं य वाउकायं य । पणगाइं जीयहरियाइं, तसकायं य सव्वसो गुल्वा ॥१२॥
एयाइं गंनि पडिजेइं, चित्तमंताइं मे अभिगणाय । परिवजिय विहरिया, इय संलाय से महावीरि ॥१३॥

अन्वयार्थः— पृथ्वीपृथ्वीकाय (आउकायं) अल्पाय (तेउकाय) वायुकाय (पणगाइं) पवन (योगदरियाइं) चीज, हरित (य; और) प्रसकाय को (गन्धो) स्वर्ग रूप से (लट्वा) जान कर (य) तथा (एयाइं) ये सय (चित्तमंताइं) सन्निवृत्त हैं (पडिजेइं) एसा निजान कर (य; और) (आउकाय) समझ कर तथा (ये) इनकी हिंसा से पाप लगता है (इय-इइ) ऐसा (संलाय) जान कर महावीरि समग्रानु महावीरि स्वामी (परिवजिय) इनकी हिंसा का त्याग करके (विहरिया) निचरते थे ॥ १२-१३ ॥

भावार्थः— समग्रानु महावीरि स्वामी पृथ्वीकाय, अल्पाय, तेउकाय, वायुकाय, धनस्वतिकाय और प्रसकाय इन छहों कार्यों को चेतन जान कर इनका पारम्भ पार्थीन हिंसा न करने हुए विचरते थे ।

अद्वैतभावनाय तमसाय, तथा य ध्याननाय । अद्वैता सव्वजोगिया सत्ता, कम्मुणा कल्पिया पुढो चाला ॥१४॥

अन्वयार्थः— (कम्मुणा) कम से यानी कर्मों के पट्टीभूत होकर (वापरा) स्वावर जीव (संलाय) प्रस रूप में परिणत होते हैं (वापरा) अथवा (ला-तमसाय) प्रस प्राणी (वापराय) स्वावर रूप में परिणत होते हैं (अद्वैता) अथवा (सव्वजोगिया) सव्व जोगिया (सत्ता) जीव-कर्मों के पट्टीभूत होकर (पुढो) भिन्न भिन्न योनियों में (कल्पिया) परिवर्तित होते रहते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थः कर्मों के पट्टीभूत होकर प्रस जीव पृथ्वीकायदि स्वावर योनियों में और स्वावर जीव प्रस योनियों में उत्पन्न होते हैं अथवा सभी योनियों में जीव जीव अगद्वैत से युक्त होकर अपने किये हुए कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न योनियों में उत्पन्न होते रहते हैं ।

पुत्रं य आउकायं य, तेउकायं य याउकायं य । पणगाइं चीगहरियाइं, तसकायं य सव्यसां मण्यो ॥ १२ ॥
प्याइं मंति पहिनेहें, निचमंताइं मे अभिगणाय । पवित्रिग विहरिया, इय मंसाय से महावीरे ॥ १३ ॥
अन्यथायें:— (पुत्रि) पुत्रीकाय (याकाय) अउकाय (तेउकाय) यायुकाय (पणगाइं) पनक (बीयदरियाइं)
पीज, हरि (१) और (नयकाय) प्रमकाय को (मण्यो) स्वयं रूप से (गाएच) जान कर (२) तथा (एयाइं) ये स्वय (विगतताइं) सन्निच
(गणि) हैं (गण्यो) पदा विचार कर (३) और (योगणाय) समझ कर तथा (४) इनकी हिंसा से पाप लगता है (११-१६) ऐसा (संगाय)
जान कर (महावीर) समयाज महारीर कर्माही (नरैकजय) इनकी हिंसा का त्याग करके (भिरिया) निचरते थे ॥ १२-१३ ॥

मामार्थ:— समयाज महारीर स्वाभी पुत्रीकाय, अउकाय, तेउकाय, यायुकाय, पनकपिकाय और प्रमकाय इन द्रव्य कार्यों
को नष्टन जान कर इनका याउकाय अयोग हिंसा न करके द्रव्य भिचरते थे ।

अरु भावरा य तमसाण, तथा य थावरणाण । अरुना सव्यजोगिया सचा, कम्मणा करिया पुढो चाला ॥ १४ ॥
अन्यथायें:— (तमसाण) कामें से (थावरणा) स्थायर रूप में परिणत होते हैं (अरुना) अथवा (सव्यजोगिया) स्वयं जोनि पासे
हैं (अरुना) अथवा (तम-तमजीवा) प्रम प्राणी (यावणाण) स्थायर रूप में परिणत होते हैं (अरुना) अथवा (सव्यजोगिया) स्वयं जोनि पासे
(वाला) यसाभी (गण) जीव-कर्मों के पशुभूत होकर (पुढो) मित्र मित्र योगियों में (कणिया) परियतिन होते रहते हैं ॥ १४ ॥

मामार्थ:— कामों के पशुभूत होकर प्रम जीव पुत्रीकायादि स्थायर योगियों में और स्थायर जीव प्रम योगियों में अल्पत होते
हैं । अथवा सजी गोतिन याव जीव समष्टेय में युक्त होकर अपने किये द्रव्य कर्मों के अनुसार मित्र मित्र योगियों में अल्पत होते रहते हैं ।



भाष्यार्थः—भगवान् ने आधाकर्म आहार का कभी सेवन नहीं किया था क्योंकि आधाकर्म आहारादि के सेवन से आठ प्रकार के कर्मों का व-च होना भगवान् ने देखा था। इसी तरह जिन जिन कार्यों से पाप होना भगवान् ने देखा था उन मग को छोड़ कर वे प्रायुक्त आहार का सेवन करते थे ॥

यो सेवह य परवर्त्यं, परपाए वि से ए भुञ्जित्वा । परिव्रज्यपाए ओमाखं, गच्छह संखटि अतरखपाए ॥१६॥

अन्वयार्थः—भगवान् (परवर्त्यं) उत्तम वस्त्र अथवा दूसरे के वस्त्र का (लो सेवह) सेवन नहीं करते थे (य) और (परपाए वि) दूसरों के पात्र में भी (ले) वे (त भुञ्जित्वा) नहीं खाते थे। वे (ओमाखं) अपमान को (परिव्रज्यपाए) त्याग कर (अतरखपाए) अदीनभाव से (लंघ्य) आहार के स्थान में (गच्छह) जाते थे ॥ १६ ॥

भाष्यार्थः—भगवान् महावीर स्वामी बहुमूल्य वस्त्रों को या दूसरे के वस्त्रों को धारण नहीं करते थे। तथा वे दूसरे के पात्र में भी भोजन नहीं करते थे। वे अपमान का उपास न करके अशीन वृत्ति से आहार के स्थान में जाते थे ॥

मायएखे असखपायस्स, खाणुगिदे रसेसु अपट्टिये । अरिख वि खो पमज्जिया, खो वि य कंठूपए सुखी गायं ॥२०॥

अन्वयार्थः—भगवान् (असखपायस्स) आहार पानी के (मायएखे) परिमाण को जानते थे। वे (रसेसु) रसों में (खाणुगिदे) आसक्त नहीं होते थे तथा (अरिखे) 'आद्य अमुक्त मिश्राय भोजन ही मूला' ऐसी प्रतिका भी वे नहीं करते थे। नेत्र की पूर्ति निज-अने के लिए उन्हींने कमी (अरिखे) खाल का (ले वि पमज्जिया) प्रमांजन भी नहीं किया (य) और (सुखी) ज्ञान मुनि भगंवात् ने (गायं) अपने शरीर में (ले वि कंठूपए) कमी लाज भी नहीं की ॥ २० ॥



वाच्यः—अग्न्यान् शिवाय चतुर्षु कं आरम्भ मे ही उम देवदूत्य प्राप्त को त्याग ॥ अपनी मुद्रायों को कैला ॥ चलने से
 ते से पोंदित होकर मुद्रायों का संक्षुब्ध नही करने से तथा कर्णों का अक्षरस्वन भी नहीं लेवे ये ॥
 एत विही अणुवर्तते, सादृश्या मद्रमया । बहुसो अपट्टिण्येण, मगलया एवं रीयंति सि वेमि ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः (मद्रमया) मतिमान् (अपट्टिण्येण) निदान रक्षित (मद्रमया) मगलया मद्रायीर स्वामी ने (एवमि)
 अनेक प्रकार से (एव) इसी (विही) विधि का (अणुवर्तते) आचरण किया ता एवलिप अग्न मोक्षार्थी आत्मियों को (एव) इसी प्रकार
 (एवमि-रक्षिते) आचरण करना चाहिये । (मि वेमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—अग्न्यान् महावीर स्वामी न पूर्वोक्त प्रकार से आचरण किया था इसलिप दूसरे मोक्षार्थी पुरुषों को भी इसी प्रकार
 आचरण करना चाहिये ऐसा भी मुख्यमोक्षार्थी अपने शिष्य भी अन्यस्वामी से कहते हैं ॥

॥ इति नवम अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

नवम अध्ययन का द्वितीय उद्देशक

पृ० ५०

पहले उद्देशक में भगवान् की चर्चा का वर्णन किया गया है, अब उस यसनि का वर्णन किया जाता है जहाँ भगवान् ठहरते थे।
चरियामगाहं निज्जाओ, एगइयाओ जाओ बुइयाओ। आइक्ख ताहं रायणासणाइं जाइं सेवित्था से महावीरे ॥२॥

अन्वयार्थः—(चारका) भगवान् महावीर स्वामी की चर्चा में (आओ) जो (एगइयाओ) कितनेक (आसणा) आसन और (निज्जाओ) शय्याएँ (बुइयाओ-गइयाओ) कहीं गई हैं (आइ) जिन्हें (शे) उन (महावीरे) भगवान् महावीर स्वामी ने (सेवित्था) सेवन किया था (ताहं) उन (रायणासणा) शय्या और आसनों के विषय में (आइक्ख) आप मुझ से कहिये ॥ १ ॥

भावार्थः—जन्मस्थामी अर्थात् गुरु श्री मुग्घोस्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन् ! भगवान् महावीर स्वामी ने जैसी शय्या और आसनादि का सेवन किया था उन शय्या और आसनों के विषय में कृपा कर आप मुझ से कहिये।

आवंगगगभापवासु, पणियगालासु एगया वासो। अदुवा पलियट्ठाण्येसु, पलालपुंजेसु एगया वासो ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—भगवान् महावीर स्वामी (एगया) कमी (आपेक्ख) जिसके चारों तरफ दीवार यनी हुई हो ऐसे खूने घर में, (गाला) और (वास) व्याकुल के स्थान में और (पणियगालासु) दूकानों में (वासो) निवास करते थे (अदुवा) अथवा (एगया) कमी (पलियट्ठाण्येसु) यदृहं और लुहार आदि के कार्य करने के स्थान में और (पलालपुंजेसु) मंच के ऊपर रखे हुए टणपुछ के नीचे (वासो) निवास करते थे ॥ २ ॥

अ० पृ० ५०
द्वि० ३०

२८३

भाषार्थः—भगवान् शशिः शत्रु के आग्रह में ही उस देवदूत को स्वयं कर अपनी मुखाधो को देना ॥ चरने में परन्तु शीत ॥ घोड़ित होकर नृजायो को मर्जुचित नहीं करने में तथा कृपे का व्यवहार भी नहीं होता ॥

एव विही अशुक्लं, मादृशं भद्रम् । बहुमो अपटिण्येण, मगवया एवं रीयंति नि वेमि ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः (भद्रम्) सतिमान् (अपटिण्येण) निदान रतिन (मादृशं) मादन (भगवन्) भगवान् महावीर स्वामी ने (शुक्ले) अनेक प्रकार त (एव इमी (वयः) विधि का (अशुक्लं) आचरण किया ता हमलिय भग्न मोक्षायों आत्मामों को (एव) इसी प्रकार (सर्वान्-गणान्) आचरण करना चाहिये । (॥ २३ ॥) वरना में कहना है ॥ २३ ॥

भाषार्थः—भगवान् महावीर स्वामी ने पूर्णक प्रकार में आचरण किया था इसलिए हमारे मोक्षायों पुत्रों को भी इसी प्रकार आचरण करना चाहिये ऐसा भी सुधर्मात्माओं अपने शिष्य भी शम्भुस्वामी ने करने हैं ॥

॥ इति नवम अध्यायन का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

भाषार्थः—भगवान् महावीर स्वामी कभी मूल पर समा, ध्याऊ और दूकान में निवास करते थे और कभी थढ़ई और लुहार काय करने के स्थान से और सख के ऊपर रखे हुए दुर्गों के नीचे निवास करते थे ॥

आमोनां आरामागार, तह य खमरं वि एगया वासो । सुमासे सुएखगारे वा, रुवखमुले वि णपा वासो ॥ ३ ॥

अन्यथाभाः—भगवान् महावीर (जन्मा) कभी (आमगारे) मुखाफिटो के उत्तरे के स्थान में यानी धर्मशाला आदि में, (आगारे) धर्मस्थे में वन हुए मकान में (तह य) और कभी (खमरे वि) मगर में (वासो) निवास करते थे । (एगया) कभी (गुवाले) दमशान में (सुमागारे) दीवार रहित मूने घर में (वा) आधाया कभी (रुवखले वि) गृह के नीचे भी (वासो) निवास करते थे ॥ ३ ॥

भाषार्थः—भगवान् महावीर स्वामी अक्सर के अनुसार कभी धर्मशाला में, कभी बगीचे में वने हुए मकान में, कभी मगर में, कभी दमशान में, कभी मूल घर में और कभी गृह के नीचे निवास करते थे ॥

एयदि मुणीं गयखेहि, मससे आमि पनरसवासो । राइदियंवि जयमाणे, अणमचे समाहिण भाद ॥ ४ ॥

अन्यथाभाः—(मुणीं) तपस्या में रत मुनि (अणं) धमए भगवान् महावीर स्वामी ने (एयदि) इन (कखेहि) स्थानों में (एनेए-मससे-मनखमशान) उरुहए तेरह वर्ष तक अर्धान् तेरह वर्ष से अधिक नहीं किन्तु तेरह वर्ष से कुछ कम समय तक (अणि) निवास किया था । वे (राइ दि० वि-राइ दि० वि) रात दिन (जयमाणे) संवत्स के अनुष्ठान में यादवान् रहते थे । वे (अणले) कभी प्रमाद नहीं करते थे पर्य (आहिण) स्त्रियर विष होकर (भाद) धर्मस्थान गुरुब्रथान ध्याने थे ॥ ४ ॥

भाषार्थः—धमए भगवान् महावीर स्वामी तेरह वर्ष से कुछ कम समय तक इन पुरोचन स्थान

। इदं ही घाता लो मगधान् वसको निवृत्ति के लिए रीतिरिवाज की रात में अपने स्थान से बाहर कर ग्यान में स्थित हो जाते थे ।

पुनसगगा, भीमा आसी अयोगरूपा य । संसप्यगा य ले पाशा, अद्भुता ले पवित्रुखी उवप्यरंति ॥७॥

अन्वयार्थः—मगधान् (सप्लेदि) जिन स्थानों में ठहरते थे (नन्) पहा (कलेण्डरा) बनेक प्रकार के (भीमा) भयंकर (वपस्यगं) वसको (वाली) इदं ये (य) और (अ) ओ (संसप्यगा पाशा) सरक कर चलने वाले प्राणी हैं उन तपे, मकुल आदि प्राणियों द्वारा (अदुल) तथा (अ) ओ (पवित्रुखी) पसी (अप्यरंति) समीप आकर मांसमक्षय करते थे उन गीप आदि प्राणियों द्वारा बहुत से उपसर्ग हुए ।

भावार्थः—जहाँ मगधान् ठहरते थे वहाँ रीति, ऊष्ण, अनुपुल और प्रविशूत्र बनेक प्रकार के भयंकर वपसर्ग हुए । सूने पर में ठहरने पर सपं और मकुल आदि द्वारा तथा रमगान में गीप और शृगाल आदि मांसभाषी प्राणियों द्वारा बनेक भयंकर वपसर्ग हुए ।

अद्भुतं उवप्यरंति, गामरवस्था य सचिद्वत्या य । अद्भुता गामिया उवसगगा, इत्थी एगारया वुरितो य ॥८॥

अन्वयार्थः—मगधान् वो कमी (कुपल) जोर और पारदारिक आदि (अ) और कमी (कलिहल) सक्रि और भाला आदि वस्तु हाथ रखने वाले (गामरवस्था) गामरवस्तु पुरुष (उवप्यरंति) उपसर्ग करते थे (य) और (एगारया) कमी (गामिया) मांस के (एली) रूमी या (इरिले) पुरुष द्वारा (अवसगगा) उपसर्ग दिये जाते थे ॥ ८ ॥

विवार्थः—सूने पर में ठहरने पर जोर और पारदारिक आदि द्वारा उपसर्ग दिये जाते थे और बाजार में बूकान आदि जन

अन्यार्थः—एगचरा वि एगया राओ । अव्याहिए कसाइत्या, पेहमाले समाहिं अण्हिएले ॥११॥

अन्यार्थः—(एगया) कभी कभी (तब) यहाँ पर (एगो) रात्रि के समय (एगचरा) आके छूमने घाले परछी लम्पट आदि (बलेहि) पुरप (स) भगवान् महावीर स्वामी से (अण्हिए) पूछते थे और (अव्याहिए) भगवान् के कुछ न योजने पर (कसाइत्या) वे क्रोधित होते थे परन्तु भगवान् (कसाहे) समाधि में (पेहमाले) तल्लीन रहते हुए (अण्हिएले) अपने सम्मान का बदला लेने की इच्छा नहीं करते थे ॥ ११ ॥

भावार्थः—भगवान् महावीर स्वामी एक एक व्यक्ति सादे पारद वर्ण तक अकेले विचरे थे । इस समय सब ये सुने पर आदि में ठहरते थे तब रात्रि के समय परछी लम्पट तार आदि र आकर उनसे पूछते थे कि “तू कौन है ? कहाँ का है ? यहाँ क्यों ठहरा हुआ है ?” किन्तु भगवान् कुछ भी उत्तर नहीं देते थे । तब वे अपनी क्रोधित होकर भगवान् को पीटते थे । भगवान् इन सब पीपहों को समभावपूर्वक सहन करते थे किन्तु बदला लेने की कभी इच्छा नहीं करते थे ।

अपमंतरंगि को इत्य, अहमंसिखि भिक्खु आहहु । अण्णुचमे से धम्मे, तुसिणीए कसाए भय् ॥१२॥

अन्यार्थः—(इत्य) यहाँ (अतरंगि) इस मकान के अन्दर (अण्णु) कौन है ? ऐसा पूछने पर (अह) मैं (भिक्खु) भिक्षु (अंसिखि) हैं इस प्रकार (आहहु) कह कर भगवान् (तुसिणीए) चुप हो जाते थे । (कसाए) यदि वे क्रोधित होते तो (अण्णु) इस पीपह को समभावपूर्वक सहन करना (अहमे) उत्तम (अण्णे) धर्म है ऐसा जानकर (अण्णे) वे भगवान् चुपचाप रहकर (अण्णे) चुप-चपान में संलग्न रहते थे ॥ १२ ॥

करते थे (अटिण्डो) वे यह इच्छा भी न करते थे कि 'मुझे पवन रहित स्थान मिले'। जिस स्थान में मगधान् ठहरते थे वह प्रायः (चट, नीच) (क्षय) कटुता आंगन वाला होता था। (एष्य) कभी कभी (राज्य) रात्रि के समय (मगध) मगधान् (लिस्सम्) आगने ठहरे हुए स्थान से बाहर निकल कर (अभ्यण) शान्तिपूर्वक नील को सहन करते हुए (अण्) स्थित रहते थे ॥१३॥से ॥१५॥

भावार्थः—(शिशिर श्रुतु में साधारण व्यक्ति शीत से कापने लगने और अन्यतीर्थिक साधु शीतनिवारण के लिए कुन्तल आदि की वाचना कागं और पवनरहित स्थान का आशय लेते तथा चिन्तेक होलकरी लजा कर शीत की निवृत्ति करने हैं। शीतस्पर्श की पीड़ा बड़े दसठ होती है इसलिए वे लोग ऐसा करते हैं किन्तु उस शिशिरश्रुतु में मगधान् महावीर स्वामी समभावपूर्वक शीतस्पर्श को सहन करते थे। वे यह इच्छा भी नहीं करते थे कि मुझे पवनरहित स्थान मिले। कभी कभी रात्रि के समय मगधान् अपने ठहरे हुए स्थान से बाहर निकलकर शीतस्पर्श को समभावपूर्वक सहन करते हुए ध्यानस्थ खड़े रहते थे।

एत विही अणुस्कंता, साहयेण भद्रमया। बहुसो अपटिण्डो, भगवया एवं रीयंति ॥ १६ ॥ त्रि वेमि ॥

अन्ययार्थः—(भद्रमया) यत्तिमान् (अपटिण्डो) निद्रान रहित (साहयेण) साहन (मगध) मगधान् महावीर स्वामी ने (बुद्धि) पटुत बार (एव) इस (विहो) विधि का (अणुस्कंता) आचरण किया था। इसलिये अग्य मोक्षार्थी आरम्भों को भी (एव) इसी प्रकार (पवित्र-रिक्ति) आचरण करना चाहिए (न वेमि) देखा मैं कहता हूँ ॥ १६ ॥

भावार्थः—मगधान् महावीर स्वामी ने पूर्वोक्त प्रकार से आचरण किया था। इसलिये दूसरे मोक्षार्थी पुरुषों को भी लज्जा अनुकूल्य करना चाहिए देखा भी सुषमांस्वामी अपने शिष्य बन्धु स्वामी से करते हैं।

॥ इति नवम अध्ययन का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

आशा से लड़े दिखाई देते थे वनको किमी भी प्रहार की भाषा एवं अन्तराय पट्ट्याये बिना भगवान् वहाँ से चीरे चले जाते थे और उन प्राणियों पर अपने मन में अप्रीति भी न लाते थे । कुछ प्राणिप्राणियों को दिसा न करते हुए भगवान् भिषाटन करते थे ।

अवि सुहृत् वा मुक्कं वा, सीरपिदं पुराणमुग्रामं । अदु युक्कमं वा, लदे पिडे अलदे दधिण ॥ १३ ॥

अन्यार्थः—(एव) भीजा बुद्ध्या (वा) अथवा (मुक्क) सुखा दुःखा, (सीरपिदं) ठण्डा आहार (वा) अथवा (पुराणमुग्रामं) पुराण का उद्देश का आहार (मुक्कं) पुराणे घान का आहार (अदु) अथवा (मुक्कं) जो आदि नीरस धान्य के वने हुए (पिडे) आहार के (लदे) मिलने पर (वा) अथवा (अलदे) न मिलने पर (दधिण) भगवान् शान्त रहते थे ॥ १३ ॥

भावार्थः—सुखा, दुःखा, ठण्डा उद्देश का अथवा पुराणे तथा नीरस धान्य का बना हुआ, जैसा भी आहार भगवान् को मिल जाता, वे उसी में सम्मोष करते थे । आहार के मिलने पर या न मिलने पर भगवान् तथा शान्त रहते थे ॥

अवि स्नाद से महाधीरे, आसणत्ये अकुक्कए स्नाणं । उद्धं अहं य तिरियं य सोए, स्नापद पेदमाये सप्पाहिमपडिण्ये ॥ १४ ॥

अन्यार्थः—(१) वे (महाधीरे) भगवान् महावीर स्वामी (आसणत्ये) उरकटुक, वीरासन आदि आसनों से बैठ का (अपडिण्ये) माघ से (अल) धर्मध्यान मुक्कध्यान (अहं) रहते थे (य) और (मनादि) अपने अन्तःकरण की शुद्धि को (सम्माणे) देखते हुए (स्नापिण्ये) निरीह माघ से (उद्धं) ऊर्ध्व लोक (अहं) अघोलोक (य) और (अधि) तिर्यक् लोक (लोए) इन तीनों लोकों के स्वरूप का (स्नापद) ध्यान में विचार करते थे ॥ १४ ॥

भावार्थः—भगवान् उरकटुक, गोदोहिका, वीरासन आदि आसनों से बैठ कर धर्मध्यान, मुक्कध्यान आदि करते थे और वे

एत विही अनुसूक्तो, माहोत्सव मद्रमया । बद्रुमो अष्टदिशेषेण, मगधया एवं रीवंति नि वेमि ॥१७॥

अन्वयार्थः—(मद्रमया) मद्रिमान (अष्टदिशेषेण) निशान रदित (माहोत्सव) मगधान् महावीर स्वामी ने (बद्रुमो) बद्रुम यार (एवं) एत (विही) विधि का (अनुसूक्तो) आचरण किया था । एतस्मिन् अग्रे मोक्षार्थी आत्माओं को भी (एवं) एसी प्रकार (ऐवति) आचरण करना चाहिए (न वेमि, ऐसा ही कहता है ॥ १७ ॥

भावार्थः—मगधान् महावीर स्वामी ने पूर्वोक्त प्रकार में आचरण किया था । एतस्मिन् दूसरे मोक्षार्थी पुरुषों को भी इसी प्रकार आचरण करना चाहिए । ऐसा श्री मुनिमांसात्मो अपने शिष्य धन्वन्तरी से कहते हैं ॥

॥ इति श्री आचारगङ्ग मृन्ना का ब्रह्मचर्य नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त ॥





